एस.सी.ई.आर.टी., बिहार
द्वारा विकसित

# S9-F

दो वर्षीय सेवापूर्व डिप्लोमा इन एलिमेन्ट्री एजुकेशन

# संस्कृत का शिक्षणशास्त्र

## (उच्च-प्राथमिक स्तर)

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् (एस.सी.ई.आर.टी.),
महेन्द्रू, पटना, बिहार

# पाठ्य पुस्तक विकास समूह

## पत्र–S-9.F

## (संस्कृत का शिक्षणशास्त्र )

| | |
|---|---|
| **दिशाबोध** | श्री दीपक कुमार सिंह, भा.प्र.से., अपर मुख्य सचिव, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना<br>श्री सज्जन राजसेकर, भा.प्र.से., निदेशक, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, महेन्द्रू, बिहार, पटना<br>डॉ० एस.पी.सिन्हा, सलाहकार, शिक्षा विभाग, बिहार, पटना |
| **समन्वयक** | डॉ० सुरेन्द्र कुमार, विभागाध्यक्ष भाषा एवं सामाजिक विज्ञान विभाग, एस. सी.ई.आर.टी. बिहार, पटना |
| **लेखक समूह** | डॉ० मधु कुमारी, प्रतिनियुक्त एस.सी.ई.आर.टी, बिहार, पटना |
| | डॉ० मणिमाला कुमारी, प्रतिनियुक्त एस.सी.ई.आर.टी, बिहार, पटना |
| | डॉ० विकास वर्द्धन भारती, डायट, सोनपुर, सारण |
| | श्री प्रतीक कुमार मिश्रा, प्रभारी प्राचार्य, पी.टी.ई.सी. मोकामा, पटना |
| | डॉ० नवल ठाकुर, प्रभारी प्राचार्य, डायट, विक्रम, पटना |
| | श्री मणिराज पाण्डेय व्याख्याता डायट, रोहतास सासाराम, बिहार |

# पाठ–सूची


| इकाई | इकाई का नाम | पृष्ठ संख्या |
| --- | --- | --- |
| 1 | संस्कृत की प्रकृति, विशेषताएँ एवं विषय–वस्तु | 4-17 |
| 2 | संस्कृत भाषा–शिक्षण कौशल | 18-65 |
| 3 | संस्कृत साहित्य एवं व्याकरण शिक्षण | 66-81 |
| 4 | संस्कृत भाषा का मूल्यांकन | 82-118 |
| 5 | संदर्भ सूची | 119 |

## इकाई–1

## संस्कृत की प्रकृति एवं विशेषताएँ

सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु क्त प्रत्यय से संस्कृत शब्द का निर्माण हुआ है जिसका अर्थ होता है शुद्ध पवित्र अथवा संस्कारवान्। भारत भूमि देवताओं की भूमि कही जाती है इस भूधरा पर भगवान राम एवं कृष्ण जैसे प्रबुद्ध महायुगी महापुरूष अवतरित हुए हैं और इस धरती पर सुशासन एवं सनातन धर्म की स्थापना के लिए अनेकों विघ्न–बाधाओं को पार करते हुए धर्म के कार्य में संघर्षरत् रहें, उसी प्रकार कोई भी भाषा अनेकों कालों युगों से संघर्ष करते हुए अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करती है, चाहे वो हिन्दी, अंग्रेजी, अथवा संस्कृत जैसी महान् भाषा ही क्यों न हो, संस्कृत भाषा अनेक भाषाओं की जननी कहीं जाती है। संस्कृत भाषा में ही चार वेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरूक्त, छन्द, कल्प, आयुर्वेद विज्ञान आदि ग्रन्थ, चार वेद, ६ः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद आदि उपलब्ध है।

### संस्कृत की प्रकृति एवं विशेषताएँ

सम्पूर्ण भारतवर्ष में संस्कृत भाषा देववाणी, अमरवाणी, गीर्वाणवाणी इत्यादि अनेक नामों से प्रसिद्ध है सम्पूर्ण विश्व की भाषाओं में सबसे प्राचीन भाषा के रूप में परिगणित है। इस देश की अधिकांश भाषाओं की जननी संस्कृत ही है। संस्कृत भाषा का शब्द निर्माण एवं ध्वनि विज्ञान इतना समृद्ध एवं अद्भूत है कि आज के जो नवीनतम विषय साहित्य की संरचना हो रही है उसके लिए पारिभाषिक तथा उत्कृष्ट प्रकार के शब्दों को दे सकती है महर्षि पाणिनि द्वारा रचित विश्व प्रसिद्ध अष्टाध्यायी नामक व्याकरण ग्रन्थ से उद्धृत उपसर्गों, विसर्गों तथा प्रत्ययों से न जाने कितने शब्दों का उद्भव हो चुका है और आगे भी होता रहेगा। संस्कृत भाषा अपनी अद्भूत शब्द रचना शक्ति एवं छन्दरस के माधूर्य से अपने समुन्नत एवं सुदीर्घ काल से विख्यात रही है। संस्कृत समस्त आर्यावर्त की अखण्डता एकता एवं राष्ट्रियता की प्रतीक भी है जिससे उसकी राजनीतिक महत्व को नकारा नहीं जा सकता। संस्कृत साहित्य को समृद्ध एवं समुन्नती की चरर्मोत्कृष्ट लक्ष्य तक पहुँचाने का श्रेय आदिकवि वाल्मीकि, कालिदास, सुबंधु, माघ, दण्डी, अश्वघोष, बाण भट्ट इत्यादि अनेकों कवियों–गद्यकाव ने संस्कृत की विभिन्न विधायों ने समृद्ध किया है। इनकी महान कृतियाँ विश्व की सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में सम्मानित एवं प्रतिष्ठित हो रही हैं संस्कृत साहित्य की गद्य, पद्य, काव्य, नाटक, व्याकरण, ज्योतिष, दर्शन, वेद, पुराण, उपनिषद् इत्यादि संस्कृत की अक्षुण्य सम्पदा विश्व के किसी भी साहित्य की अपेक्षा समृद्ध एवं वैभवसम्पन्न है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक समाज तक मानव जाति का कोई ऐसा क्षेत्र रिक्त नहीं होगा जिसमें संस्कृत साहित्य ने अपनी प्रतिभापूर्ण एवं ओजयुक्त काव्यों से महत्वपूर्ण एवं अत्यन्तोपयोगी योगदान न किया हो। संस्कृत वाङमय में संस्कृत के विभागों का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है वैदिक भाग, लौकिक भाग, ज्ञान भाग, विज्ञान भाग, भारतीय दर्शन, भूगोल शास्त्र, रेखागणित, चिकित्सा विज्ञान, भौतिक विज्ञान इत्यादि। इनका संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार से है।

वैदिक भाग– संस्कृत वाङमय में भारतीय दर्शन एक अमूल्य निधि है पाश्चात्य दर्शन से कहीं अधिक उच्च शिखर पर स्थित भारतीय दर्शन साहित्य है। वैदिक वाड्मय में चार अपौरूषेय वेदों को माना गया है जिसमें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। भारतीय परम्परा में जो उषा काल का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है उसकों ऋग्वेद ने

''उषसश्चेकिता्नोंऽबोधि। अर्थात् उषाकाल में उठने वाला ही ज्ञानवान् होता है। इत्यादि गधात्मक वाक्यों से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है भारतीय वेद को संस्कृत सम्पूर्ण वाङय का जनक भी कहा जाता है। जो संस्कृत साहित्य प्रेमियों को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। पाश्चात्य विद्वानों ने जो वेद एवं दर्शन की जो भूरि–भूरि प्रशंसा की है उसका मूल तत्व भारतीय विश्लेषण के अनुसार भारतीय संस्कृत साहित्य ही रहा है। प्रकारान्तर में मानव समाज में प्रचलित कर्मानुसार वर्ग व्यवस्था भारतीय वेद संहिता की ही देन है। भारतीय वैदिक परम्परा को चरर्मोत्कर्ष पर प्रतिष्ठित कराने का श्रेय वेद द्रष्टा ऋषियों को ही जाता है।

**व्याकरण की दृष्टि से संस्कृत भाषा विश्व** की प्राचीनतम भाषाओं में से एक है। ठीक उसी प्रकार कोई भी भाषा जब अपने उत्कृष्ट भाव को प्राप्त करती है तो उसको इस लक्ष्य तक आसीन करने का श्रेय उसके व्याकरण को जाता है संस्कृत व्याकरण की रचना ईसा की छठी शताब्दी में ही हो चुकी थी जिसके प्रणेता महर्षि पाणिनि को माना जाता है जिन्होंने अष्टाध्यामी नामक ग्रंथ की रचना महाकाव्य की रचना पन्तञजलि ने की पाणिनि के सूत्रों वो एक व्याकरण सम्मत ग्रन्थ है। पुनः यास्क मुनि ने भाषा विज्ञान पर आधारित निरूक्त की रचना की जो अत्यन्त ही अद्भूत है। राजनीतिशस्त्र इत्यादि अनेक विषयों का भी ज्ञान होता है संस्कृत साहित्य केवल संस्कृत पदों को ही प्रतिपादित नहीं करता अपितु समाज को शिष्ट (सभ्य) बनाने का एक अद्भूत साधन भी है। इसिलिए जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा था ''यदि मानव समाज को सुसंस्कृत, सभ्य एवं अनेक मानवीय गुणों से सुसज्जित करना है, तो उसे पाणिनि पद्धति से संस्कृत की शिक्षा देनी चाहिए।'' संस्कृत पंद्यकाव्य अपने पदलालित्य स्वारानुभूति, छन्दोबद्धपरख इत्यादि विधाओं से आप्लवित है कदाचित् संस्कृत साहित्य से प्राचीन एवं समृद्ध वाङमय किसी अन्य भाषा साहित्य का नहीं है आदि कवि बाल्मीकी, कालीदास, श्री हर्ष, दण्डी, भवभूति, माघ इत्यादि की कृतियाँ अनेक विशेषताओं से युक्त है। जिनके कुछ उदाहरण प्रस्तुत है कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञान शाकुन्तलम् में '' विवक्षितं ह्यनुक्तमनुतापं जनयति''।

2– ''स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति। इत्यादि कुछ उत्कृष्ट प्रत्युदाहरण माने जाते है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्य में कथा–विधा भी अपने रूप में अनूठी है इन कथाओं की प्रमुख विशेषता यह रही है कि इनके माध्यम से अध्येता को सहज रूप से ही नैतिकता, समाजिकता, व्यवहारिकता, राजनैतिक सूक्ष्मता, मनोवैज्ञानिकता इत्यादि की शिक्षा प्राप्त हो जाती है इन ग्रन्थों की कथाओं का प्रयोग अनेक महाकाव्यों में भी देखने को मिलता है प्रमुख कथा विशेषज्ञ के रूप में विष्णुदत्त शर्मा की हितोपदेश, कथा सरित्सागर, पंचतन्त्र, मित्रलाभ इत्यादि ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

संस्कृत के विपुल वाङमय में चिकित्सा विज्ञान को भी स्थान दिया गया है या ऐसा भी कहा जा सकता है कि चिकित्सा विज्ञान भी संस्कृत साहित्य से उत्पन्न हुआ है जिसको आधुनिक युग में (मेडिसिन) पद्धति भी कहा जाता है। इसके प्रमुख आचार्य (ऋग्वेद के अनुसार) अश्विनी कुमार, वरूण तथा रूद्र आदि देवता माने जाते हैं ऋग्वेद में नेत्र–चिकित्सा कुष्ठचिकित्सा तथा भेल–संहिता में रक्त संवाहिनी इत्यादि क्रियाओं का उल्लेख मिलाता है। जैसे–

''हदो रसो निस्सरति तस्मादेति च सर्वशः।

सिराभिर्हृदयं वैति तस्मात्त्प्रभवाः सिराः।।

इसी प्रकार आयुर्वेद में भी उस समय केवल चिकित्सा विज्ञान ही नहीं अपितु शल्य विज्ञान के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रगति हो रही थी। संस्कृत वाङमय के क्षेत्र में भौतिक विज्ञान का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है भौतिक विज्ञान के प्रमुख प्रणेता आचार्य कणाद् जी माने जाते हैं। कणाद् मुनि ने सृष्टि के निर्माण में अणुओं की महत्वपूर्ण खोज करके भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में अतिमहत्वपूर्ण सिद्धांत की स्थापना की आगे चलकर इस क्षेत्र में उदयनाचार्य एवं वाचस्पति मिश्र ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।

**संस्कृत भाषा की संरचनागत विशेषताएं**

सम्प्रति इस पूरे संसार में लगभग भाषाविद आचार्यो के अनुसार तीन हजार भाषायें बोली जाती है एवं उनका प्रयोग साहित्य रचना कौशल इत्यादि के लिए किया जाता है भाषाओं का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जाता है सर्वप्रथम आकृतिमूलक, जिसमें उस भाषा से सम्बन्धित पदों एवं वाक्यों का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। दूसरा भाषा सम्बन्धि पारिवारिक वर्गीकरण। जिसके अन्तर्गत ध्वनि, पदरचना, वाक्य रचना, शब्द विचार स्थान, विचार आदि इन सभी विषयों में समानता स्थापित करके भाषा परिवार की संरचना की जाती है।

संस्कृत भाषा को सभी भाषाओं की जननी कहा जाता हैं, इसको भारतीय विद्वानों से लेकर पाश्चात्य विद्वानों ने एक स्वर में स्वीकार किया है। जिस प्रकार प्रयाग के त्रिवेणी संगम में सरस्वती नदी अन्तर्लीन रहती है उसी प्रकार देववाणी संस्कृत भी सभी भाषाओं में अन्तलीन रहती है। संक्षेप रूप से यदि संस्कृत भाषा विज्ञान को परिभाषित करना है तो वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से भाषा की प्रकृति, विकास एवं संरचना के अध्ययन पूर्वक उन विषयों का सैद्धांतिक निर्धारण ही भाषा विज्ञान है। भाषा का विकास, उसकी संरचना, उसका ह्रास एवं सामाजिक परिस्थिति से होती हुई अपने आप को पल्लवित करती है। मानव समाज किस प्रकार उसको प्रयोग करेगा, किस प्रकार उसका विकास करेगा भाषा और उसकी उपभाषा में किस–किस कारण परिवर्तन एवं विकास होता रहा इत्यादि विषयों का समावेश संस्कृत भाषा की संरचना के अन्तर्गत करना अनिवार्य है तथा आवश्यक भी प्रतीत हो रहा है, जिससे संस्कृत भाषा के अध्येताओं शिक्षा शास्त्र के प्रशिक्षुओं एवं अन्य सामाजिक भाषा विद्वानों को अनेकानेक लाभ हो सके, सर्व प्रथम संस्कृत शिक्षण के लिए उच्चारण कौशल को प्रथम सोपान माना जाता है। जो संस्कृत शिक्षण एवं संस्कृत शास्त्र की धूरी है संस्कृत की ध्वनि संरचना अत्यन्त वैज्ञानिक है।

**उच्चारण की शिक्षा–** संस्कृत साहित्य में सर्वप्रथम छात्रों को उच्चारण की शिक्षा दी जाती है क्योंकि उच्चारण के दोष से अर्थ का अनर्थ हो जाता है। भाषा के सम्यक एवं परिष्कृत ज्ञान के लिए शब्दों का शुद्धोच्चारण होना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में महाभाष्यकार पंतजलि ने एक उक्ति का वर्णन किया है।

**'' एको शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गेलोके च कामधुग्भवति'' अर्थात् एकी ही शब्द अगर सही प्रकार से आता है तो मनुष्य की इह लोक एवं परलोक दोनों लोकों की कामनाओं की पूर्ति करने में सक्षम है।** उक्त उक्ति से यह सिद्ध होता है कि शब्द् शक्ति से परिपूर्ण संस्कृत में उच्चारण विद्या का कितना महत्व एवं उपायोगिता है। भारतीय संस्कृति की मूल ऋचाओं का अस्तित्व उनके उच्चारण कौशल पर ही आधारित है। जैसा उक्त मन्त्र द्वारा ज्ञात होता है।

तथा– महाभाष्यकार ने मंहाभाष्य के प्रथमाह्निक में मंत्रों के अशुद्धों उच्चारण से मनुष्य को क्या–क्या हानि हो सकती है सका भी विस्तृतः वर्णन निम्न श्लोक के माध्यम से किया है–

''मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह।

स वाग्वज्रो यजमानं हि नस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराघात।।

इसका आशय यह है कि वियवरूप नामक एक दैत्य ने घोर तप करके इन्द्र के आसन को डगमगा दिया जिसके प्रतिशोध में इन्द्र ने उसका वध कर दिया जिससे दुखित होकर उसके पिता त्वष्टा ने इन्द्र की मृत्यु के लिए एक महान् यज्ञ का आयोजन किया परन्तु उस अनुष्ठान में त्वष्टा के द्वारा मन्त्रों का अशुद्ध उच्चारण करने के कारण उन मन्त्रों का विपरित अर्थ हो गया जिससे यज्ञ में डाली गयी आहुतियों के परिणाम स्वरूप स्वयं उनका पुत्र वित्रासुर ही नष्ट हो गया। इस सम्बन्ध में पाणिनि ने भी व्याकरण की दृष्टि से शब्दों के शुद्धोच्चारण के स्वरूप को निम्न श्लोक के माध्ययम से उल्लेखित किया है–

व्याघ्री यथाऽहरेत् पुत्रान् दंष्ट्राभ्यां न च पीड्येत्।

भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णन् प्रयोजयेत्।।

अर्थात शेरनी जिस प्रकार अपने नवनिहाल शिशुओं को अपने नुकिलें दातों में दबाकर एक स्थान से दूसने स्थान पर ले जाते हुए न तो उनको अपने दातों से दबाती है और न ही उन्हें अपने मुख से गिराती है उसी प्रकार पद समूहों में प्रयुक्त वर्णों का उच्चारण करते समय वर्ण स्थानच्युत न हो, सम्पूर्ण रूप से उच्चरित हो जाए तथा एक दूसरे वर्ण से पृथक हो परस्पर रूप से सम्मिलित न हो। इसका ध्यान रखा जाता है। शुद्धोच्चारण के उपरान्त संस्कृत संरचना के क्षेत्र में प्रमुख रूप से वर्णों की ध्वनि पर विचार किया गया है। मूल रूप से वर्णों के तीन प्रकार होते हैं।

1. स्वर वर्ण 2. व्यंजन वर्ण 3. प्लुत वर्ण

संस्कृत व्याकरण में स्वर वर्णों का उच्चारण स्वतन्त्र रूप से किया जा सकता है। परन्तु व्यंजन वर्ण स्वतन्त्र रूप से उच्चरित नहीं होते हैं उन्हें स्वरों की सहायता ग्रहण करनी पड़ती है। प्लुत वर्णों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से लौकिक संस्कृत में देखने को नहीं मिलता है उसका प्रयोग केवल वेदों में ही दृष्टिगोचर होता है। संस्कृत में स्वर वर्ण हस्व, दीर्घ एवं प्लुत भेद से इक्कीस होते हैं

हस्व– अ, इ, उ, ऋ, लृ

दीर्घ– आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ

प्लूत– आइ३ ई३ ऊ३ ॠ३ ए३ ऐ३ ओ३ औ३

व्यञजन वर्णो में स्पर्श वर्णों की संख्या पच्चीस है।

कर्वग– क ख ग घ ङ

चर्वग– च छ ज झ ञ

टवर्ग– ट ठ ड ढ ण

तवर्ग– त थ द ध न

पवर्ग– प फ ब भ म

अवर्गीव्यंजन अष्ट है–

अन्तस्थः– य र ल व

उष्मवर्णाः– श ष स ह

अनुस्वार ( ं ) = स्वर के बाद ही नासिका के द्वारा अनुस्वार का उच्चारण होता है। जैसे– अं इं

विसर्ग ( : )

जिह्वामूलीय = ( ᳵक ᳵख ) यथा बा ᳵ करोति चैत्र ᳵ खनति।

उपध्यानीय = ( ᳶप ᳶफ ) यथा बाल ᳶ पिबति वृक्ष ᳶ फलति।

इन चारों को पाणिनी ने अयोगवाह की संज्ञा दी है।

महर्षि पाणिनी द्वारा उपरोक्त वर्णों के भेद भी बताए गये हैं जो निम्नलिखित है–

जैसे– स्तर से उत्पन्न भेद तीन प्रकार के माने जाते है–

1. उदात्त– अ इ उ
2. अनुदात्त– अ इ उ
3. स्वरित– अं इं उं

काल से उत्पन्न भेद भी तीन प्रकार के माने गए है–

1. हस्व
2. दीर्घ
3. प्लुत

स्थान से उत्पन्न भेदों की संख्या ग्यारह है जो निम्नलिखित है

कण्ठ– अ, क, ख, ग, घ, ड., ह,:

तालु– इ, च, छ, ज, झ, ञ, य, श

मूर्धा– ऋ, ट, ठ, ड, ढ़, ण, र, ष

दन्त– लृ, त, थ, द, ध, न, ल, स

ओष्ठ– उ, प, फ, ब, भ, म, ◌ प ◌ फ

नासिका– ञ, म, ड., ण, न,

कष्ट तालू– ए, ऐ

कण्ठोष्ठ– ओ, ओ

दन्तोष्ठ– व

जिह्वामूल– ◌ क ◌ख

इसी प्रकार प्रयत्न भी पाणिनि मुनि ने दो प्रकार के बताएं है।

1. आभ्यन्तर प्रयत्न
2. बाह्यप्रयत्न

आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार के होते हैं।

स्पृष्ट– स्पर्श वर्णों को ही (क से म पर्यन्त) स्पृष्ट कहा जाता है।

ईष्त्स्पृष्ट– अन्तस्थ (य र ल व ) वर्णों को कहा जाता है।

ईषद्विवृत– उष्मवर्ण– श ष स ह

विवृत– स्वर

संवृत– अ (प्रयोगों में ही केवल )

संवृत प्रयत्न में केवल अकार, इकार उकार ही माने जाते है। संस्कृत जगत के कतिपय विद्वान आभ्यन्तर प्रयत्नों के ईषत्‌विवृत भेद को स्वीकार नहीं करते है। वे केवल आभ्यन्तर प्रयत्न के मात्र–चार भेदों को ही स्वीाकर करते हैं– स्पृष्ट, ईषत्स्पृष्ट, विवतृ और संवृत बाह्यप्रयत्नों की संख्या एकादश हैं–

विवार संवार, श्वास, नाद, घोष, अघोष, अल्प्राण, महाप्राण, उदात्त, अनुदात्त, स्वरित,

विवार श्वास अघोष में खर वर्ण आते है जैसा की ख,फ,छ,ठ,थ,च,ट,त,क,प्,श,ष,स् इन वर्णों को कठोर व्यञ्जन भी कहते हैं।

संवार नाद घोष– में हश् वर्ण आते है ह,य,व,र,ल,ञ,म,ड़,ण,न,झ,भ,व,ढ,ध,ज,ब,ग,ऽ,द। इनको व्यन्जन कहते है।

अल्पप्राण– अल्पप्राण में वर्ग का प्रथम तृतीय एवं पंचम तथा य र ल व (अन्तःस्थ) वर्ण आते है।

महाप्राण में वर्ग का द्विती, चतुर्थ तथा श,ष,स,ह चौदह वर्ण आते हैं।

पाणिनि के अनुसार सभी स्वर उदात्त अनुदात्त एवं स्वरित हो सकते हैं उदात्त स्वर वे है जो अपने अनुशासित स्थान के ऊर्ध्व भाग से उत्पन्न होते हैं।

स्वरित वर्ण में उदात्त एवं अनुदात्त दोनों वर्णों के गुणों को अन्तर्निहित किया जाता है।

**काल–** काल के आधार पर भी ह्रस्व, दीर्ध, एवं प्लुत मात्राओं को वर्गीकृत किया जाता है। अर्थात् जिस वर्ण के उच्चारण में जितने काल का समय लगता है उसी काल भेद से मात्राओं का वर्गीकरण होता है।

### ❖ कक्षा शिक्षण में संस्कृत के आँचलिक भाषाओं के साथ संबंध की व्याख्या

संस्कृत भाषा को व्यवहार परक बनाना आवश्यक है जिसके द्वारा छात्रों को संस्कृत सीखने के प्रति रूचि जागृत होगी तथा स्वयं संस्कृत सीखने की प्रवृति का विकास होगा इसके लिए अन्य उपयों के साथ–साथ कक्षा शिक्षण में संस्कृत के आंचलिक भाषाओं के साथ सह संबंध स्थापित किया जाना परमावश्यक है। इससे संस्कृत सीखना आनंददायी भी होगा तथा संस्कृत में आंतरिक अभिरूचि भी उत्पन्न होगा। संस्कृत को व्यवहार परक बनाने के लिए कुछ आंचलिक भाषाओं के साथ सह संबंध अधोलिखित प्रकार से स्थापित किया जा सकता हैः–

1. **दैनिक उपयोग के वस्तुओं को संस्कृत के साथ जोड़ना।** जैसे (क) अस्नान–स्नानम्, रोटी–रोटीका जल–जलम्, वियाह–विवाहः, छात्र–छात्राः ऑजुर–अंजलिः, पैर–पादौ, हाथ–हस्तौ, काठ–काष्ठः इसी प्रकार से अन्यान्य बहुत सारे शब्द हैं जो दैनिक जीवन अन्यान्य में व्यवहार किया जाता है, किन्तु उन्हें संस्कृत से सन्निकटता का ज्ञान नहीं होने के कारण छात्र उसे जान नहीं पाते है ऐसे तमाम शब्दों की सूची तैयार कर बच्चों को समझाया जाय तो बालकों में संस्कृत के साथ आंचलिक भाषा का सह–संबंध स्वयं स्थापित हो जाएगा।
2. **लोक उत्सव के माध्यम से संस्कृत को आंचलिक भाषा के साथ संबंध, जोड़नाः–**
बिहार में प्रत्येक क्षेत्र में अलग–अलग लोक–उत्सव मनाया जाता हे उन तमाम लोक उत्सवों को संस्कृत के साथ सह–संबंध स्थापित कर के आंचलिक भाषा के साथ

संस्कृत का संबंध स्थापित किया जा सकता है। जैसेः– मिथिला क्षेत्र में जूड़शीतल को पौराणिक संस्कृत का उदाहरण बताकर तथा मगध क्षेत्र में गया श्राद्ध की उपयोगिता को संस्कृत की प्राचीन कथा सुनाकर संस्कृत के आंचलिकता को समझाया जा सकता है।

3. **लोक नाटक के माध्यम से संस्कृत के आंचलिक भाषा के साथ संबंध।**
बिहार के प्रत्येक क्षेत्र में अनेकों लोक नाट्य कलाओं का प्रयोग किया जाता है। जैसे–मिथिला में विद्यापति उगना संवाद जिसका संस्कृत रूपान्तरण भी है एवं भोजपुर क्षेत्र में विदेशिया तथा तिरहुत में झिझिया के विषय में तो कठघोड़वा नृत्य, आदि का संस्कृत में व्याख्या कर या नाट्य रूपान्तरण कर संस्कृत के आंचलिक भाषा के साथ संबंध स्थापित किया जा सकता है।

4. लोक–कला के माध्यम से कक्षा शिक्षण में संस्कृत के आंचलिक भाषा के साथ संबंध स्थापित करनाः– राज्य में अनेकों प्रकार के लोक–कला प्रचलित है।, जिसका अनेक रूप एवं रंग देखने को मिलता है उन तमाम लोक कलाओं को अगर संस्कृत निष्ठ बनाया जाय तो संस्कृत स्वतः आंचलिक भाषाओं के साथ सह–संबंध स्थापित कर लेगा जिससे कक्षा शिक्षण में प्रभावशाली ढंग से संस्कृत को प्रस्तुत किया जा सकता है।

5. **संस्कृत को आंचलिक भाषा में समझा करः–**
संस्कृत पढ़ाने में अनेक विधियों का प्रयोग किया जाता है उसमें से एक विधि अनुवाद विधि। जिस विधि में संस्कृत के शब्दो अथवा वाक्यों को आंचलिक भाषा में अनुवाद करके समझाया जा सकता है या आंचलिक भाषा के शब्दों को संस्कृत में अनुवाद करके समझाया जा सकता है।

6. शब्द निपुण विधि के द्वाराः–
इस विधि के माध्यम से कला शिक्षण के समय आंचलिक भाषा के शब्दों को खेल–खेल में बच्चों को संस्कृत में उच्चारण करने हेतु कहा जाता है तथा एक वाक्य बनाने के लिए कहा जाता है। जिससे संस्कृत के साथ–साथ बच्चों का शब्द भंडार एवं उच्चारण कौशल का विकास होगा साथ ही बच्चें मनोयोग एवं उत्साह पूर्वक आंचलिक भाषाओं के साथ–साथ संस्कृत का भी अध्ययन करेंगे।

7. वाचन और पाठ द्वाराः– बालकों में आंचलिक भाषा के विकास के लिए वाचन को प्रभावी बनाने की दृष्टि से संस्कृत पद्य एवं गद्य का वाचन करवाया जाना चाहिए तथा आंचलिक भाषाओं में अनुवाद कराकर उनकी वाचन संबंधी कमियों को दूर किया जाना चाहिए।

8. प्रश्नोत्तर द्वारा:– संस्कृत और आंचलिक भाषा में सह संबंध के लिए प्रश्नोत्त विधि से छात्रों की अभिव्यक्ति को सटीक और शुद्ध बनाने के लिए तथा उनके ज्ञान का पता लगाने के लिए विभिनन प्रकार के प्रश्न किए जाएंगे और उनके उत्तरों का संशोधन किया जाना चाहिए।
9. विभिन्न सहशैक्षिक गतिविधि यथा–वाद–विवाद, बालसभा, एकांकी, कविता, कहानियाँ, भाषण, सुलेख आदि के द्वारा छात्रों की सृजनात्मक प्रवृत्तियों को पल्लवित और पुष्पित किया जा सकता है उक्त गतिविधियाँ अगर कराई जाती है तो निश्चित ही संस्कृत के साथ बालकों का आंचलिक भाषा के साथ संबंध स्थापित होगा।
10. व्याकरण शिक्षण :– संस्कृत भाषा की शुद्धि के लिए भाषा की प्रकृति को समझना तथा शुद्ध लेखन की कला को विकसित करने की दृष्टि से शब्द, वाक्य, संज्ञा सर्वनाम संधि समास कारक आदि का ज्ञान कराकर छात्रों को व्याकरणिक ज्ञान को संपुष्ट किया जा सकता है।

## (प्रारम्भिक स्तर पर संस्कृत की पाठ्यचर्या–पाठयक्रम तथा पाठ्यपुस्तकें)

पाठ्यक्रम का स्थान शिक्षा में महत्वूपर्ण माना जाता है, क्योंकि पूर्व में से ही कहा जा चुका है कि शिक्षा एक सोद्देश्य प्रक्रिया है और यह अपने उद्देश्यों की पूर्ति पाठ्यक्रम के द्वारा करती है। शिक्षण लक्ष्य जैसे होंगे पाठक्रम भी उसी प्रकार का होगा। पाठ्यक्रम की चुनौतियों में पूर्ण करने के लिए पाठ्यक्रम को समझना परम आवश्यक है।–

पाठ्यचर्या का शाब्दिक अर्थः पाठ्यचर्या के लिए अंग्रेजी में ''करीकुलम'' शब्द प्रयुक्त किया जाता है जो ''लेटिन'' के ''कुर्रेर'' शब्द से निष्पन्न है, जिसका अर्थ हैः दौड़ का मैदान।

इस प्रकार कुरीकुलम ऐसा मैदान है जिसके इर्द–गिर्द बालकों की क्रियाएं सम्पादित होती है।

पाठ्यचर्या का संकुचित अर्थः– पाठ्यचर्या का संकुचित अर्थ कोर्स (course) मात्र से है, जिसके आधार पर अध्ययन–अध्यापन कार्य का संपादन किया जा सकता है।

व्यापक अर्थ– पाठ्यचर्या अपने संकुचित अर्थ में बौद्धिक विषयों हेतु बहुत पहले से प्रचलित था परन्तु ये विषय पाठ्यचर्या के अंग मात्र है। पाठ्यचर्या के व्यापक अर्थ की ओर ये इंगित नहीं करता है। इन विषयों की सामग्री को अन्तर्वस्तु कहा जाता है, कक्षा शिक्षण की दृष्टि से सुविधा के लिए जब इस विषय–सामग्रियों को व्यवस्थित कर लिया जाता है तो उसे ''पाठ्य–विवरण'' (syllabus) कहते हैं। भ्रमवश पाठ्यचर्या (curriculum) तथा ''पाठ्यक्रम'' (syllabus) को एक अर्थ में प्रयुक्त कर दिया जाता है परन्तु पाठ्य–विवरण पाठ्यक्रम अंशमात्र है, न कि सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या में बताया जाता है कि वर्ष भर में निर्धारित विषय–वस्तु को साप्ताहिक तथा मासिक स्तर पर कैसे पूर्ण करना है। कोर्स अन्तर्वस्तु, पाठ्यक्रम विवरण आदि शब्द पाठ्यक्रम की अवधारणा के स्पष्टीकरण में असमर्थ है। पाठ्यचर्या हेतु शिक्षाक्रम तथा पाठ्यक्रम शब्द का

प्रयोग होता है। इसमें पूरे साल में पाठ्य सामग्री के साथ–साथ पाठ्य सहगामी क्रियाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

पाठ्यक्रम की आधुनिक अवधारणा अत्यधिक व्यापक है। इसके अन्तर्गत कक्षीय वातावरण के साथ–साथ छात्र जो भी अनुभव प्राप्त करते हैं वे सभी इसमें सम्मिलित किए जाते हैं। पाठ्यक्रम में बौद्धिक विषय, विविध कौशल, पढ़ना, लिखना, शिल्प, खेलकूद तथा अन्य क्रियाकलाप भी आते हैं। पाठ्यक्रम को क्रिया के रूप में समझना चाहिए, न कि अर्जित ज्ञान या संगृहित तथ्यों के रूप में। पुस्तकालय, कक्षा, प्रयोगशाला, खेल के मैदान तथा वाद–विवाद प्रतियोगिता, सारस्वत कार्यक्रम तथा विद्यालय परिसर में प्राप्त किये जाने वाले सभी अनुभव पाठ्यचर्या के अन्तर्गत आते हैं तथा इस प्रकार पाठ्यचर्या की व्यापक अवधारणा के अन्तर्गत विद्यालय में संचालित समस्त गतिविधियां आ जाती है परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि यह इतना भी व्यापक नहीं है कि इसके अन्तर्गत मनुष्य का समग्र जीवन आ जाय।

पाठ्यचर्या की परिभाषा

पाठ्यचर्या के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु अनेक विद्वानों की परिभाषाएं निम्न प्रकार से हैः–

कनिंघम के अनुसार '' पाठ्यक्रम शिक्षक के हाथों में एक साधन है, जिससे वह अपने विद्यालय में अपने उद्देश्ययों के अनुसार अपने छात्रों को कोई भी रूप दे सकता है''

फ्रोबेल के अनुसार – ''पाठ्यक्रम में समस्त अनुभव निहित है, जिनको विद्यालय में अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए उपयोग में लाया जाता है।''

मध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसारः– '' पाठ्यक्रम का अर्थ केवल उन सैद्धान्तिक विषयों से नहीं है, जो विद्यालय में परस्पर रूप से पढ़ाये जाते हैं वरन् इसमें अनुभवों की यह समग्रता सम्मिलित होती है जिनकों छात्र विद्यालय की उन बहुमुखी क्रियाओं से प्राप्त करता है जो कक्षा, पुस्कालय, कार्यशाला, प्रयोगशाला और खेल के मैदान में तथा शिक्षकों एवं छात्रों के जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित कर सकता है और उनके सन्तुलित व्यक्तित्व के विकास में सहायता करता है।

उपरोक्त परिभाषाओं के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या का एक अंश मात्र है जिसमें समस्त ज्ञान कौशलों का प्रयोग किया जाता है तथा पाठ्यचर्या में समस्त जीवन कौशल समाहित रहता है एवं जीवन जीने की कला विकसित करता हैं। पाठ्यचर्या का जब निर्माण किया जाता है उस समय कुछ सावधानियाँ भी रखनी होती है। ताकि पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम विद्यालय की समस्त गतिविधियाँ तथा समग्र विकास हेतु उत्तरदायी हो। अतः पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम निर्माण के समय कुछ सावधानियाँ इस प्रकार हैः–

1. संस्कृत की पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम का निर्माण बालक की अवस्था, आवश्यकता के अनुरूप तैयार किया जाना चाहिए
2. पाठ्यचर्या को निर्माण का आधार मनोवैज्ञानिक हो।
3. संस्कृत की पाठ्यचर्या या पाठ्यक्रम निर्माण के लिए व्यापक दृष्टिकोण तथा लचीलेपन का अनुसरण करना चाहिए।
4. संस्कृत की पाठ्यचर्या शिक्षण उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होनी चाहिए।
5. सस्कृत में पाठ्य–सहगामी क्रियाओं शिक्षण पद्धति तथा पूरक पठन सामग्री का संकेत होना चाहिए।
6. पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए कि वह जाति, धर्म, भाषा तथा लिंग आदि के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास कर सकें।

अगर उपरोक्त सावधानियाँ संस्कृत के पाठ्यचर्या या पाठ्यक्र में रखते है तो बालको का सर्वांगीण विकास संभव है तथा बालक एक परिपक्त नागरिक बनकर भविष्य में निखरेंगे

पाठ्यपुस्तक

प्राचीन काल में लिपि के आविष्कार से पूर्व भाषा की शिक्षा मौखिक ही थी। लिपि का आविष्कार हो जाने पर हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का प्रयोग होने लगा, किन्तु हाथ से लिखकर ग्रन्थ तैयार करने में बड़ा परिश्रम लगता था। अतः पाठ्य पुस्तकों का प्रचलन उस रूप में नहीं हो पाया जिस रूप में आज है। पाण्डुलिपियाँ कम हुआ करती थी। अतः अध्यापक मौखिक रूप से पढ़ा देता था और छात्र उस सामग्री को याद कर लिया करते थे। मुद्रण–कला के आविष्कार ने पाठ्य–पुस्तकों को सुलभ बना दिया और शनैःशनैः पाठ्यपुस्तकों सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का आधार बन गई।

संस्कृत भाषा शिक्षण में पाठ्य–पुस्तकें महत्वपूर्ण स्थान रखती है। संस्कृत पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता के विषय में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैः–

1. संस्कृत पाठ्यपुस्तकों में अनेक प्रकार की सूचनाएं एक ही स्थान पर मिल जाती है अतः सूचनाओं के संग्रह के लिए इसकी आवश्यकता है।
2. पाठ्यपुस्तकों के प्रयोग से पढ़ने और पढ़ाने में सहायता मिलती है।
3. संस्कृत के पठित पाठ को पुनः स्मरण करने कराने में यह सबल साधन है।
4. अध्यापक अपने सुविधानुसार बालकों की योग्तया का ध्यान रखते हुए शिक्षा दे सके इसके लिए पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता है।
5. अध्यापक अपने सुविधानुसार बालको की योग्यता का ध्यान रखते हुए शिक्षा दे सके, इसके लिए पाठ्य–पुस्तकों की आवश्यकता है।
6. छात्रों को गृह कार्य देन में सुविधा होती है।
7. प्रारंम्भिक स्तर पर उत्तम पाठ्य–पुस्तकों से पाठ्यक्रम निधारण में भी सहायता मिलती है।

प्राचीन काल में भारतवर्ष में पाठ्यपुस्तक के लिए ग्रन्थ शब्द का प्रचलन या ग्रन्थ का अर्थ है गूँथना, बांधना, नियमित ढंग से जोड़ना, क्रम से रखना आदि। अंग्रेजी का ''बुक'' शब्द जर्मन भाषा के ''बीक'' **(beach)** शब्द से बना है, जिसका अर्थ है वृक्ष। फ्रांसीसी भाषा में भी इसका संबंध वृक्ष की छाल या तख्ती पर लिखना से है।

आज पाठ्य–पुस्तक की संज्ञा प्रत्येक पुस्तक को नही दी जा सकती। ''गुड''के अनुसार एक निश्चित पाठ्पुस्तक के अध्ययन के प्रमुख साधन के रूप में एक निश्चित शैक्षिक स्तर पर प्रयुक्त करने के लिए एक निश्चित विषय पर व्यवस्थित ढंग से लिखी हुई पुस्तक पाठ्य–पुस्तक कहलाती है। वृहत हिन्दी कोष में पाठ्य–पुस्तक की परिभाषा हैं– ''किसी संस्था या परीक्षा समिति की ओर से किसी कक्षा के छात्रों के पढ़ने के लिए निर्धारित पुस्तक कोर्स की किताब।''

प्रारंभिक स्तर पर संस्कृत पाठ्य–पुस्तक के निम्नलिखित लाभ हैः–

1. प्रारंभिक स्तर पर संस्कृत के पाठ्य–पुस्तक की सहायता से वह समय नष्ट होने से बचाया जा सकता है जो अभ्यास कार्य तथा गृह–कार्य को श्रुत लेख से लिखाने में लगता है।
2. कक्षा में पढ़ी हुई अथवा सुनी हुई बातें छात्रों को कक्षा में याद नहीं हो पाती है। उन्हे दोहराने की आवश्यकता होती है। अतः पाठ्य–पुस्तक ही इसके लिए सबसे सरल साधन है, छात्र घर में विषय की रीति पाठ्य–पुस्तक को दोहरा सकता है।
3. छात्रों को स्वतंत्रता पूर्वक अध्ययन करने में पाठ्य–पुस्तका ही लाभदायक सिद्ध होती है।
4. प्रारंभिक स्तर पर बालकों को सामूहिक रूप से पढ़ाने में भी पाठ्य–पुस्तक सहायक सिद्ध होती हैं

5. जब कभी अध्यापक कक्षा में नहीं पहुचतें हैं तो ऐसे अवसर पर विद्यार्थी स्वयं पाठ्य–पुस्तको को पढ़कर समय का सदुपयोग कर सकते हैं। इससे अनुशासन भंग नहीं हो पाता।

## प्रारंभिक स्तर पर पाठ्य–पुस्तकों का उपयोग

केवल परीक्षा की दृष्टि से पाठ्य–पुस्तक का पढ़ना एकांगी है। यद्यपि परीक्षा प्रधान शिक्षा प्रणाली का यह एक दोष कहा जा सकता है, तथापि छात्रों को विषय के ज्ञानार्जन का लक्ष्य ही मुख्य रूप से सम्मुख रहना चाहिए। तथापि पाठ्य–पुस्तक का प्रयोग उचित रीति से हो रहा है या नहीं इसका पता लगाते रहना चाहिए। इसके लिए निम्नलिखित प्रश्नों पर विचार किया जाना चाहिए:–

1. बालक अथवा शिक्षक पाठ्य–पुस्तक को साध्य न समझे अपितु साधन समझें।
2. पाठ्य–पुस्तकों में प्रतिपादित ज्ञान विषयों के मूल में न जाने की अपेक्षा पल्लवग्राही ज्ञान के ग्रहण से ही संतुष्ट हो जाते हैं।
3. शिक्षक सहायक सामग्री के रूप में पाठ्य–पुस्तक में दिये हुए प्रश्नों अभ्यासों आदि की ओर वे प्रायः ध्यान नहीं देते।
4. मुद्रित शब्दों को पत्थर की लकीर की तरह समझ लेते हैं।
5. पाठ्य–पुस्तकों में सम्मिलित विषय–सामग्री के अध्ययन तक ही संबंधित विषय के ज्ञानार्जन की इति समझ लेते हैं।
   विद्यार्थी भी पाठ्य–पुस्तकों को साधन समझे साध्य नहीं। साध्य विषय का ज्ञान ओर इस विषय के ज्ञान के माध्यम से अर्जित की जाने वाली ये प्रवृत्तियाँ, कुछ कुशलताएं एवं क्षमताएं हैं, जिससे उनके व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

# संस्कृत भाषा के पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त

**भूमिका**–शिक्षा के तीन मुख्य अंग होते हैं– शिक्षक, शिक्षार्थी और पाठ्सक्रम। नियोजित शिक्षा के कुछ निश्चित उद्देश्य होते है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कुछ विषयों का ज्ञान एवं क्रियाओं में शिक्षण आवश्यक है। इसी को पाठयक्रम कहते हैं। पाठयक्रम शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन है। इसे करीक्यूलम या पाठ्यक्रम (Curriculum) भी कहते है। व्यवाहरिक रूप में विशिष्ट विषय के लिए पाठ्यक्रम का उपयोग वांछनीय है।

**पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त–**

**1.** पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्यों के अनुकूल होना चाहिए।
**2.** पाठ्यक्रम में मानव जीवन के समस्त अनुभावों का समावेश होना चाहिए।
**3.** पाठ्यक्रम बालकों की रूचि, रूझान, क्षमता तथा आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए।
**4.** पाठ्यक्रम में विषय एवं क्रियाओं का क्रम उपयोगिता की दृष्अि से होना चाहिए।
**5.** पाठ्यक्रम में विभिनन विषयों एवं क्रियाओं में सह–सम्बन्ध होना चाहिए।

किसी भी भाषा शिक्षण के लिए शिक्षण–सूत्र निर्धारण किए गए हैं उनके उपयोग का भी सिद्धान्त कार्य में लेना चाहिए। ये सूत्र निम्नलिखित हैं:–

1. ज्ञात से अज्ञात की ओर–पूर्व ज्ञान पर आधारित शिक्षण होना चाहिए जैसे ताजमहल का चित्र दिखाकर शाहजहाँ का जीवन–वर्णन भाषा में पढ़ाया जाए।

2. अनिश्चित से निश्चित की ओर– मातृभाषा में बालक सन्धि पढ़ते हैं। उन्ही के आधार पर संस्कृत के नियमों का निश्चित ज्ञान कराया जाए।
3. वस्तु से विचार की ओर–किसी भी विषय वस्तु की वैचारिकता ग्रहण करना कठिन होता है, अतः हाथि के उपर निबन्ध लिखने के लिए पहले हाथी की प्रतिमूर्ति प्रस्तुत की जाए बाद में निबन्ध लिखाया जाए।
4. विश्लेषण से संश्लेषण की ओर–व्याकरण पढ़ते समय पहले ही दीर्घ सन्धि में शब्दों को विश्लेषित करके बालकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए। बाद में संश्लेषण किया जाए।
5. बालक की प्रकृति का अनुसरण–बालक की प्रकृति का अनुसरण किया जाए जैसे बालक खेल द्वारा सीखना चाहता है। अतः उसे खेल द्वारा शिक्षित किया जाए।
6. आगमन से निगमन तथा निगमन से आगमन की ओर–विषय वस्तु के अनुसार उपर्युक्त दोनो सूत्रो का यथासम्भव प्रयोग किया जाए। आगमन का अर्थ है–छात्रों से उदाहरण प्राप्त करना तथा परिभाषित करना। निगमन का अर्थ है–पहले परिभाषा बताना और तब बालकों से उदाहरण प्राप्त करना।

- **पाठ्यक्रम शिक्षा के उद्देश्य के अनुकूल होना चाहिएः–**

संस्कृत भाषा शिक्षण का उद्देश्य भाषा के चारो कौशलों का विकास करना है। बालक संस्कृत में सुनने, बोलने, पढ़ने तथा लिखने के योग्य हैं, इन्हीं चारों का विकास करना है। पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसके द्वारा भाषा के इन उद्देश्यों की पूर्ती हो सके। बालक भाषा तत्वों का भी ज्ञान प्राप्त कर सकें, अर्थग्रहण कर सकें, अभिव्यक्ति के योग्य हो सकें, ऐसा पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए।

- **बालकों की रूचि, रूझान व क्षमता के अनुकूलः–**

पाठ्वस्तु ऐसी हो जिसके द्वारा बालक में चारित्रिक गुणों का विकास हो सके। देशभक्तों, महापुरूषों, विद्वानों की जीवनी, उनके विचारों से पुर्ण पाठ्यवस्तु भाषा के विभिन्न रचना रूपों मे कहानी, गद्य, कविता, निबंध, जीवनी आदि से संबंधित हो। पाठ्यक्रम निर्माण करते समय इन सभी का ध्यान रखना चाहिए।

**माध्यमिक स्तर पर संस्कृत विषय पर स्थानः–**

कक्षा 9,10,11 तथा 12 को माध्यमिक कक्षाएँ माना जाता है। इसमें कक्षा 9 व 10 तक सभी विषय अनिवार्य होते हैं। छात्रों को विषय चयन की छूट नहीं है। त्रिभाषा में सिद्धांत के अनुसार इन कक्षाओं में अधिकांश छात्र संस्कृत को तृतीय भाषा के रूप में अध्ययन करते हैं। ग्यारहवीं कक्षा के छात्र को संकाय का चयन करना पड़ता है, जैसे– कला, विज्ञान, वाणिज्य, कृषि, ललित कला आदि में से एक संकाय। कला संकाय में अन्य विषयों के साथ संस्कृत विषय भी हैं। ग्यारहवीं से कला संकाय में बहुत कम छात्र संस्कृत विषय का चयन करते हैं–

संस्कृत विषय को ग्यारहवीं व बारहवीं कक्षा में अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाना चाहिए इसके संबंध में निम्न तर्क हो सकते हैं–

1. संस्कृत समस्त भारत की सपर्क भाषा के रूप में विकसित हो रही है।
2. संस्कृत से मातृभाषा व प्रांतीय भाषा का विकास होता है। छात्र अन्य भाषा ज्ञान को संस्कृत से संबद्ध कर सकता है।
3. संस्कृत से भारतीय संस्कृति की रक्षा होती है तथा भारतीय संस्कृति से भारत का अस्तित्व सुरक्षित हैं।

4. हमारे प्राचीन ग्रंथ संस्कृत में ही हैं। उन ग्रंथों को पढ़ने समझने के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है।
5. संस्कृत से अध्ययनकर्ता के चारित्रिक गुणों का विकास होता है।

**कक्षा 6 में संस्कृत शिक्षक इन कथनों का प्रयोग निम्न प्रकार कर सकता है—**

1. कक्षा में आदर्शवाचन, अनुकरण वाचन, मौन वाचन प्रश्नोत्तर, शब्दार्थ लेखन आदि के समय शिक्षक व छात्र क्रियाशील रहते हैं। अतः कक्षा में अध्यापक को चाहिए की वह निरन्तर इनका प्रयोग करता रहे।
2. संस्कृत श्लोकों का गतिपूर्वक वाचन का अवसर दिया जाए।
3. व्याकरण शिक्षण में आगमन निगमन प्रविधि का प्रयोग करें और रचना में संग्रथन विधि का। तालिका देकर अनेक वाक्य रचना करने को कहा जाए। व्याकरण का नियम बताकर उसकी पुष्टि हेतु पाठ्यक्रम में से उदाहरणों का चयन किया जाए।
4. पाठ का हिंदी में अनुवाद करते समय छात्र वाचन करे तथा हिंदी में अर्थ करने का प्रयास करे।
5. बालगीत का आदर्शवाचन तथा छात्रों द्वारा संवेत वाचन तथा अनुकरण वाचन आरोह—अवरोह पूर्वक कराया जाए।

**संस्कृत भाषा की उपयोगिताः—**

1. संस्कृत हमारे पुर्वजों की धरोहर है। यह विश्व की प्राचीनतम भाषा है।इसके ग्रन्थरत्न हमारे सर्वाधिक प्राचीन वैभव को व्यक्त करतें हैं।
2. संस्कृत भाषा में भारत का प्राचीन वैभवपूर्ण, गौरवपूर्ण इतिहास सुरक्षित हैं। संस्कृत नहीं हो तो हमारा इतिहास विस्मृत हो जाएगा, हमारा वैभवपूर्ण अतीत स्वप्न की तरह नष्ट हो जाएगा।
3. ज्ञान, विज्ञान, समाज शास्त्र, दर्शन, चिकित्सा, गणित, ज्योतिष आदि सभी सामाजिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक ग्रंथ में हैं। यदि संस्कृत भाषा का अध्ययन नहीं होगा तो इन ग्रंथों का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।
4. हमारे जीवन से मृत्युपर्यन्त सोलह संस्कार संस्कृत भाषा में सम्पन्न होते हैं। हमारे, धार्मिक कार्य पूजा पाठ आदि संस्कृत भाषा में ही सम्पन्न कराए जाते हैं। अतः संस्कृत का पठन आवश्यक है।
5. संस्कृत में आत्मकल्यान की उदात्त भावना का विकास होता है। संस्कृत पूर्व—पश्चिम की कड़ी है। प्राचीन शिलालेख,ताम्रपत्र आदि संस्कृत में ही लिखे हुए हैं— इन सबके लिए संस्कृत भाषा की उपयोगिता है।

**पाठ्यक्रम निर्धारण में ध्यान देने योग्य बातेंः—**

छात्रों को संस्कृत में क्या पढाया जाए, कितना पढ़ाया जाए? कक्षानुसार संस्कृत शिक्षण विषय का निर्धारण करना पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम निर्धारण में कक्षा स्तर, छात्रों की आयु उनका बौद्धिक विकास, शिक्षण अवधि आदि बातों को ध्यान रखा जाता है।

माध्यमिक स्तर, (कक्षा 10 तक) सामान्य शिक्षा के विद्यालयों में संस्कृत एक विषय के रूप में पढ़ायी जाती है। इनमें संस्कृत का सामान्य ज्ञान दिया जाना चाहिए। ऐसे विद्यालयों में संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन, व्याकरण आदि पर ध्यान नहीं देना चाहिए। संस्कृत पाठशाला में संस्कृत विषय शिक्षा अन्य विषयों का माध्यम भी है। वहाँ सम्पूर्ण वातावरण

संस्कृतमय होता है। ऐसी संस्कृत पाठशालाओं में संस्कृत का गहन अध्ययन, व्याकरण आदि का अध्ययन अपेक्षित है। उच्च माध्यमिक विद्यालयों, महा विद्यालयों में वैकल्पिक विषयों के रूप में संस्कृत शिक्षण होता है। ऐसी संस्थाओं में, संस्कृत साहित्य का विशेष अध्ययन का पाठ्यक्रम रखना उचित होगा। पाठ्यक्रम निर्धारण के लिए इस प्रकार संस्था, उसके स्तर का ध्यान रखना आवश्यक है। फिर भी पाठ्यक्रम निर्धारण के समय ध्यान रखने योग्य निम्नांकित बिन्दु हैं:—

1. पाठ्यक्रम स्वतः सम्पूर्ण हो जैसे— पाठ्यक्रम में मौखिक कार्य, उच्चारण, वाचन, शब्दावली, व्याकरण, रचना कार्य, अनुवाद, भाषा तत्व, रूप, धातु आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।
2. पाठ्यक्रम पूर्व कक्षा स्तर के आगे का हो, उसमें पिछली कक्षा के पाठ्यक्रम का अभ्यास होता रहे। अथात् दोनों कक्षाओं के पाठ्यक्रम में तारतम्य हो। वह पूर्वज्ञान से संबंधित हो।
3. पाठ्यक्रम में विभिन्न आयु, स्तर, छात्रों की रूचि, बौद्धिक विकास को ध्यान में रखते हुए निधारित किया जाए। अर्थात् सरल से कठिन, ज्ञात से अज्ञात के सिद्धांतों का पालन होना चाहिए। प्रारम्भ में छोटे—छोटे सलल वाक्य हों। कहानी, पाठ, संवाद पाठों में दैनिक जीवन में उपयोगी शब्दावली का प्रयोग हो।
4. पाठ ऐसे हों जो सामाजिक , नैतिक तथा सांस्कृतिक वातावरण से संबंधित व यथार्थवाद पर आधारित हो। पाठों में जीवन मूल्य, प्रेरक प्रसंग स्थानीय वातावरण व संस्कृति से युक्त सामग्री हो।
5. पाठ्यक्रम में प्रायः सभी विषयों से संबंधित सामग्री होनी चाहिए। अर्थात् पाठ साहसी घटनाएँ, इतिहास, भुगोल क्रीड़ा, नैतिक जीवन, यात्रा, वैज्ञानिक, दैनिक व्यवहार आदि से सम्बन्धित हो। पाठों में रोचकता, विविधता का होना भी आवश्यक है।
6. पाठों के साथ नवीन शब्दावली, व्याकरण ज्ञान, रचना सामग्री आदि का भी उल्लेख होना चाहिए।
7. पाठ्यक्रम में सभी विधाओं के पाठ हों, अर्थात् कहानी, कविता, संवाद, पाठ, गद्य रचना, एकांकी आदि का समुचित अनुपात हो।

# इकाई – 2

# संस्कृत भाषा – शिक्षण कौशल

इकाई की रूपरेखा

- संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य एवं उपागम
- श्रवण कौशल एवं इसके विकास की विधियाँ
- पठन कौशल एवं पठन कौशल के विकास की विधियाँ एवं निदान
- लेखन कौशल की विभिन्न विधियाँ
- वाचन कौशल (मौखिक अभिव्यक्ति)

'शिक्षण' एक सामाजिक प्रक्रिया है, जिस पर प्रत्येक देश की शासन प्रणाली, दर्शन तथा मूल्यों एवं संस्कृति का प्रभाव पड़ता रहता है। जिस देश में जैसी दार्शनिक विचारधारा होती है वहाँ की शिक्षण प्रक्रिया पर उस देश की प्रणाली तथा दार्शनिक पक्ष का वैसा ही प्रभाव पड़ता है और तदनुसार ही शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण भी किया जाता है।

''उद्देश्य' यह शब्द 'उद्' उपसर्ग 'दिश्' धातु तथा 'ण्यत् प्रत्यय से बना हुआ है, जिसका अर्थ है किसी कार्य को दिशा या निर्देश देना। शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षण कार्य करते समय हमारी जो मूल धारणाएँ इच्छाएं प्रवृत्तियाँ व प्रेरक तत्व होते हैं, यही शैक्षिक उद्देश्य है, क्योंकि इन्हीं के माध्यम से शैक्षिक कार्यों की प्रगति होती है। संस्कृत विषय को पढ़ाने से पूर्व निर्धारित किये जाने वाले उद्देश्य संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य कहलाते हैं। इन्हीं के माध्यम से शैक्षिक कार्यों का आयोजन किया जाता है तथा उन्हें दिशा मिलती है।

शिक्षण उद्देश्य का अर्थ एन० सी० ई० आर०टी० द्वारा प्रकाशित 'मूल्याङ्कन तथा परीक्षा अंक' में इस प्रकार वर्णित है 'उद्देश्य वह बिन्दु अथवा अभीष्ट है, जिसकी दिशा में कार्य किया जाता है अथवा उद्देश्य वह व्यवस्थित परिवर्तन है जिसे क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है अथवा जिसके लिए हम क्रिया करते हैं।'

संस्कृत शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करते समय ध्यान रखने योग्य बिन्दु

1. विद्यालय की प्रकृति–संस्कृत शिक्षण के उद्देश्यों का निर्धारण करने से पूर्व यह चिन्तन करना आवश्यक है, कि हम किस प्रकार के विद्यालय में संस्कृत पढ़ाने जा रहे हैं। क्या वह परम्परागत पद्धति पर आधारित पाठशाला में किया जायेगा, जहाँ प्रायः कक्षा तीन से छात्र संस्कृ त पढ़ना प्रारम्भ करते हैं अथवा आधुनिक पद्धति पर आधारित विद्यालय में किया जायेगा, जहाँ प्रायः कक्षा छः से संस्कृत का पठन–पाठन प्रारम्भ होता है।

2. कक्षा का स्तर – विद्यालय की प्रकृति के अनुसार कक्षा के स्तर का निर्धारण करना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार कक्षा के स्तर का स्वरूप 5+3+3+4 है। अतः इसके अनुसार संस्कृत विषय की अनिवार्यता में दृष्टिगत रखते हुए संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य का निर्धारण किया जाना चाहिए

3. विधा अनुसार संस्कृत साहित्य की किस विधा को आज हम पढ़ाने जा रहे है? इस विषय को भी उद्देश्य निर्धारण करते समय अवश्य ध्यान में रखना चाहिये, क्योंकि प्रत्येक विधा की अपनी विशेषताएं व प्रकृति होती है, और तदनुसार उसका शिक्षण किया जाता है, अतः गद्य, पद्य, कथा, व्याकरण, नाटक, रचना आदि के लिए शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण भी भिन्न–भिन्न होता है।

संस्कृत शिक्षण के उद्देश्यों का वर्णन ब्लूम के द्वारा की गई टैक्सोनोमी के आधार पर तथा विभिन्न स्तरों के आधार पर भी किया जा सकता है।

ब्लूम ने सम्पूर्ण शैक्षिक उद्देश्यों को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया हैः–

1. ज्ञानात्मक पक्ष (Cognitive Domain)

2. भावात्मक पक्ष (Affective Domain)

3. मनोगत्यात्मक पक्ष (Psychomotor Domain)

संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य

संस्कृत शिक्षण की दृष्टि से हम शैक्षिक स्तरों को तीन वर्गों में रख सकते हैं। शैक्षिक स्तरानुमूल संस्कृत शिक्षण को तीन स्तरों में वर्गीकृत कर सकते हैं।

1. प्रारम्भिक स्तर।

2. माध्यमिक स्तर ।

3. उच्च स्तर।

1. प्रारम्भिक स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य

I- छात्रों में यह क्षमता उत्पन्न करना कि वे सरल गद्य खण्डों को शुद्ध पढ़ सकें।

II- उन्हें इस योग्य बनाना कि वे सरल संस्कृत श्लोकों का शुद्ध उच्चारण करते हुए पाठ कर सकें।

III- संस्कृत के कठिन गद्य खण्डों एवं श्लोकों के मुद्रित रूप को देखकर उन्हें शुद्ध रूप में लिखने की क्षमता उत्पन्न करना।

IV- सरल श्लोकों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा देना।

V- कण्ठस्थ किए हुए श्लोकों को बिना देखे शुद्ध रूप में लिखने की प्रेरणा देना।

VI- श्रुतलेख लिखने का अभ्यास कराना।

VII- मातृभाषा के सरल वाक्यों का संस्कृत में अनुवाद करने की क्षमता का विकास करना

VIII- सरल गद्य खण्डों एवं सरल श्लोकों का मातृभाषा में अनुवाद करने की योग्यता विकसित करना।

IX- प्रारम्भिक व्याकरण का ज्ञान देना।

X- भावानुसार वाचन करने की कुशलता का विकास करना।

XI- सरल संस्कृत वाक्यों व श्लोकों का अर्थग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।

XII- छोटे–छोटे वाक्यों में संस्कृत भाषा में वार्तालाप करने की क्षमता उत्पन्न करना।

XIII- संस्कृत भाषा के प्रति छात्रों में रूचि उत्पन्न करना।

2. माध्यमिक स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य

I- संस्कृत श्लोकों को छन्द के अनुसार उचित, लय–ताल में पढ़ने का अभ्यास डालना।

II- संस्कृत के महत्त्वपूर्ण श्लोकों एवं सूक्तियों को कण्ठस्थ करने की प्रेरणा देना जिससे कि वे उन्हें आवश्यकतानुसार उद्धरण के रूप में प्रयुक्त कर सकें।

III- कुछ कठिन गद्य खण्डों को उचित आरोहावरोह, विराम चिह्नो का ध्यान रखते हुए उचित गति से पढ़ने की क्षमता उत्पन्न करना।

IV- संस्कृत भाषा में अपने विचारों को अभिव्यक्त करने की योग्यता का विकास करना।

V- संस्कृत में भाषण, कहानी कथन आदि को सुनकर अर्थग्रहण करने की क्षमता का विकास करना।

VI- हिन्दी भाषा के सरल खण्डों को संस्कृत में अनुवाद करने की क्षमता उत्पन्न करना।

VII- छात्रों को संस्कृत साहित्य से परिचित कराना ताकि उनमें पढ़ने की रुचि विकसित हो सके।

VIII- संस्कृत भाषा में छोटे–छोटे लेख, पत्र, कहानी आदि लिखने की प्रेरणा देना।

3. उच्च्य स्तर पर संस्कृत शिक्षण के उद्देश्य

I- संस्कृत के श्लोकों का छन्द के अनुसार वाचन करने की योग्यता का विकास करना।

II- संस्कृत भाषा के सरल व कठिन गद्य खण्डों को शुद्ध रूप में पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।

III- संस्कृत साहित्य का मातृभाषा में अनुवाद करने की क्षमता का विकास करना।

IV- संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता का विकास करना ।

V- पत्र, निबन्ध, संवाद, कहानी आदि को संस्कृत भाषा में लिखने की क्षमता का विकास करना।

VI- संस्कृत साहित्य का विशद् ज्ञान कराना।

VII- उत्कृष्ट साहित्य संकलन की प्रेरणा देना।

VIII- संस्कृत रचनाओं का समालोचनात्मक विवेचन करने की क्षमता का विकास करना ।

IX- अवसरानुकूल संस्कृत में भावाभिव्यक्ति करने की कुशलता उत्पन्न करना।

X- संस्कृत भाषा व साहित्य से सम्बन्धित विषयों पर शोध कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करना

XI- संस्कृत के ध्वनि विज्ञान का ज्ञान कराना।

- संस्कृत शिक्षण के उपागम

जिस समय विश्व के अन्य देशों में लोग सांकेतिक भाषा से काम चला रहे थे, उस समय भारत में संस्कृत भाषा द्वारा ब्रह्मज्ञान का प्रसार किया जा रहा था। इसके प्रयोग का क्षेत्र विशाल था। इसका स्पष्ट वर्णन पतञ्जलि के महाभाष्य में मिलता है। 'महान् हि शब्दस्यप्रयोग विषयः। सप्तद्वीपा वसुमती, त्रयो लोकाः, चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः एकशतमध्वर्युशाखाः, सहस्त्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यं, नवधाथर्वणो वेदः, वाकोवाक्यम, इतिहास, पुराणम् इत्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयः।' शनैः शनैः देशकाल एवं वातावरण के प्रभाव के कारण संस्कृत भाषा प्राकृत, अपभ्रंश व आधुनिक बोलियों जैसे खड़ी बोली का रूप धारण करती हुई भी अपने निज स्वरूप से विचलित नहीं हुई, किन्तु स्थिति यहाँ तक भी पहुंची कि इसे कतिपय लोगों द्वारा मृतभाषा के रूप में सम्बोधित किया जाने लगा।

प्राचीन काल में संस्कृत अव्याकृत थी अर्थात् प्रकृति प्रत्यय आदि के विभाग से रहित होने के कारण उसका उपदेश 'प्रतिपदपाठविधि' से किया जाता था अर्थात् एक–एक करके शब्द पढ़े जाते थे– गौः, अश्वः, पुरुषः, हस्ती आदि किन्तु इस विधि से शिक्षण में अधिक समय लगता था। इस काठिन्य के निवारणार्थ उसके प्रत्येक शब्द को विभक्त कर अध्ययन की सुगमता के लिए

वैज्ञानिक विधि का निर्माण किया गया और उसमें प्रकृति प्रत्यय आदि की कल्पना की गई। इसी प्रकार प्राचीन व्याकरण ग्रन्थों में हमें निगमन विधि का रूप भी दृष्टिगत होता है।

हम कई वर्षों से पाठ योजना निर्माण हेतु हरबार्ट की पंचपदी का अनुकरण करते आ रहे हैं। शनैः–शनैः मूल्यांकन विधि की ओर भी उन्मुख हुए हैं। संस्कृत शिक्षण की तीन विधियों के आधार पर संयुक्त विधि का प्रयोग करने का भी हमारा प्रयास रहा है, तथापि छात्रों तथा अभिभावकों की यह धारणा कि संस्कृत भाषा रटने से ही आती है तथा भावी अध्यापकों की यह समस्या कि छात्र संस्कृत समझते ही नहीं, वे संस्कृत पढ़ना ही नहीं चाहते, इनके समाधान के लिए हम कुछ नवीनतम उपागमों को संस्कृत शिक्षण में प्रयुक्त कर सकते हैं जैसे–

1. सूक्ष्म शिक्षण उपागम
2. आगमन उपागम (हिल्दातवा का शिक्षण प्रतिमान)
3. समस्या समाधान उपागम
4. प्रायोजना कार्य
5. दल शिक्षण
6. पर्यवेक्षण अध्ययन उपागम
7. कम्प्यूटर पर आधारित शिक्षण प्रतिमान
8. अनुदेशन
9. संग्रन्थन उपागम

1. सूक्ष्म शिक्षण उपागम

शिक्षण को कला तथा विज्ञान दोनों ही रूपों में विकास की गति के साथ स्वीकार किया गया। कला के रूप में मानने वाले शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार शिक्षक जन्मजात होते हैं और उनमें विशिष्ट शिक्षण कौशल विद्यमान होते हैं। विज्ञान के रूप में मानने वाले शिक्षाशास्त्रियों के अनुसार अच्छे शिक्षक प्रशिक्षण द्वारा तैयार किये जाते हैं। उनमें विशिष्ट शिक्षण कौशलों का

विकास किया जा सकता है। इस द्वितीय धारणा का आगमन विज्ञान व तकनीकी विकास के प्रभाव से शिक्षा जगत में हुआ। इस दृष्टि से शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का उत्तरदायित्व और अधिक बढ़ जाता है।

बड़ौदा विश्वविद्यालय के एम० बी० बुच 1968 के अनुसार, "सूक्ष्म शिक्षण अध्यापक शिक्षा की वह प्रविधि जो छात्रों को स्पष्ट रूप से पारिभाषित शिक्षण कौशलों को वास्तविक विद्यार्थियों के छोटे समूह के साथ पाँच से दस मिनट के शिक्षण की नियोजित श्रृंखला के लिए ध्यानपूर्वक तैयार किये गये पाठों में प्रयोग करने का अवसर प्रदान करती है तथा विडियो टेप पर परिणामों के निरीक्षण के अवसर प्रदान करती है।''

सूक्ष्म शिक्षण शिक्षक प्रशिक्षण की एक सरल, सुग्राहय तथा मितव्ययी विधि है, क्योंकि यह कम समय में भावी शिक्षकों में शिक्षण कौशलों का उन्मेष करती है।

शिक्षण के गुण–

- यह एक व्यक्तिगत शिक्षण प्रविधि है तथा इसमें वास्तविक शिक्षण तथा पाठ्यवस्तु सरल होती है।
- इसमें कक्षा का आकार बहुत सीमित होता है।
- इसमें कालांश का समय 5 से 10 मिनट तक का होता है।
- इसका उद्देश्य विशिष्ट शिक्षण कौशलों का विकास करना है
- इसमें अभ्यास क्रम की प्रक्रिया पर अधिक नियन्त्रण रखा जाता है
- इसके द्वारा कक्षा शिक्षण की जटिलताओं को कम किया जाता है।
- एक ही समय में किसी एक विशेष कार्य एवं कौशल के प्रशिक्षण पर बल दिया जाता है।
- इस शिक्षण से छात्र अध्यापकों में आत्मविश्वास जागृत होता है।
- इस उपागम में छात्राध्यापक के शिक्षण का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया जाता है।
- इसमें निरीक्षक छात्राध्यापक को परामर्शदाता के रूप में परामर्श देता है।

- इसका उद्देश्य व्यावसायिक परिपक्वता का विकास करना होता है।

- कुशल अध्यापकों के शिक्षण को रिकॉर्ड कर आदर्श पाठ के रूप में छात्राध्यापकों के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है।

- इसमें सेवारत अध्यापकों के तकनीकी कौशल विधियों के प्रति दृष्टिकोण में नवीनता लाना होता है।

- रिकॉर्डिंग कर अपने शिक्षण का स्वतः मूल्यांकन कर सुधार लाना होता है। यह अध्यापकों के लिये निरन्तर प्रशिक्षण का साधन है।

- शिक्षण के सैद्धान्तिक व व्यवहारों का सुन्दर समन्वय किया जाता है। छात्राध्यापकों को कक्षा में जाने से पूर्व प्रशिक्षण मिल जाता है। उनको अपने मित्रों के बीच निःसंकोच होकर न केवल अभ्यास करने का अवसर मिलता है अपितु सैद्धान्तिक ज्ञान, प्रतिपोषण आदि को बार–बार जाँचने का अवसर भी प्राप्त होता है।

- एक ही अध्यापक को दो या दो से अधिक बार शिक्षण व्यवहारों की तुलना का अवसर मिलता है। तत्काल प्रतिपुष्टि (Feedback) प्रदान कर शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाया जाता है।

2. आगमन उपागम ( हिल्दा तबा का शिक्षण प्रतिमान)

इस प्रतिमान को आगमन प्रतिमान भी कहा जाता है। इस शिक्षण प्रतिमान के प्रवर्तक हिल्दातबा है जिन्होंने सेन्ट्रल कोस्टा विद्यालय में किये गये प्रयोगों के आधार पर इसका विकास किया है। इसका विकास अध्यापक शिक्षा के लिए किया गया है। जिससे छात्राध्यापक अधिगम की. समस्या का विश्लेषण कर उसका निदान तथा उपचार कर सकें। इस प्रतिमान में विशेषतः तथ्यों एवं सूचनाओं का संग्रह किया जाता है। अतः सामाजिक विज्ञान विषयों के शिक्षण में यह अधिक लाभकारी है तथा इसका प्रयोग संस्कृत शिक्षण में व्याकरण पढ़ाते समय किया जा सकता है।

इस प्रतिमान हेतु हिल्दा तबा ने तीन शिक्षण व्यूह (Teaching Strategies) बताए हैं–

(1) सम्प्रत्यय का निर्माण करना (Concept formation),

(2) आँकड़ों की व्याख्या करना (Interpretation of Data),

(3) सिद्धान्तों का प्रयोग करना (The Application of principles)

1) उद्देश्य अथवा केन्द्र बिन्दु इस शिक्षण प्रतिमान का मुख्य उद्देश्य मानसिक क्रियाओं का विकास करना तथा सिद्धान्तों का बोध करने की क्षमता का विकास करना है।

2) संरचना इस शिक्षण प्रतिमान में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जिनसे मानसिक प्रक्रियाओं का विकास हो सके। इस प्रतिमान की संरचना विशेषतः तीन कौशलों पर निर्भर करती है। जिनमें से प्रत्येक के तीन–तीन भाग हैं। इस प्रकार कुल 9 अवयव इसमें पाए जाते हैं (1) व्याख्या, (2) समूहीकरण, (3) पहयान, (4) तथ्यों के मध्य सम्बन्ध बनाना, (5) सम्बन्ध व्याख्या, (6) निष्कर्ष निरूपण, (7) उपकल्पना निर्माण, (8) उपकल्पनाओं की व्याख्या, (9) उपकल्पनाओं की जाँच ।

3) सामाजिक प्रणाली– इस प्रतिमान में शिक्षक छात्रों का पारस्परिक सहयोग बना रहता है। शिक्षक शिक्षण की सभी क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है, किन्तु कक्षा में सहयोग की भावना रहती हैं। लोकतंत्रात्मक भावनाओं का अनुसरण किया जाता है तथा शिक्षक पथप्रदर्शक के रूप में कार्य करता है।

4) संभरण व्यवस्था – आगमन प्रतिमान की सफलता के लिए पर्याप्त मात्रा में साहित्य तथा उपकरणों की आवश्यकता होती है। अध्यापक को इन उपकरणों का प्रयोग करने में दक्ष होना चाहिए।

5) मूल्यांकन – इस प्रतिमान में छात्रों के व्यवहार का मूल्यांकन करने हेतु प्रयोगात्मक परीक्षाएं, निबन्धात्मक तथा वस्तुनिष्ठ प्रश्नों का सहारा लिया जाता है।

6) उपयोग – इस प्रतिमान का प्रयोग सामाजिक विषयों के शिक्षण हेतु उपयोगी है। यह दूरदर्शन, अनुदेशन, प्रत्यय निर्माण तथा शिक्षण की भूमिका के निर्वाह में महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। इसकी सहायता से छात्रों में सृजनात्मकता तथा उत्पादक चिन्तन की क्षमता का विकास किया जा सकता है। अतः संस्कृत जैसे साहित्यिक विषयों के लिए भी यह उपयोगी सिद्ध होगा।

3. समस्या समाधान उपागम

समस्या समाधान एक जटिल व्यवहार है। इस व्यवहार में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें सम्मिलित रहती हैं। छात्र के समक्ष ऐसी समस्यात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं जिनमें वह स्वयं चिन्तन, तर्क तथा निरीक्षण के माध्यम से समस्या का हल ढूंढ सके। सुकरात ने भी

आध्यात्मिक संवादों में इसका प्रयोग किया था। समस्या समाधान सार्थक ज्ञान को प्रदर्शित करता है। इसमें मौलिक चिन्तन निहित होता है। इसके लिए शिक्षण की व्यवस्था चिन्तन स्तर पर की जाती है।

समस्या समाधान का अर्थ– समस्या समाधान एक ऐसी शैक्षिक प्रणाली है, जिसके द्वारा शिक्षक तथा छात्र किसी महत्त्वपूर्ण शैक्षिक कठिनाई के समाधान अथवा निवारण हेतु प्रयत्न करते हैं तथा छात्र स्वयं सीखने के लिए प्रेरित होते हैं।

थॉमस एम० रिस्क "समस्या–समाधान किसी कठिनाई या जटिलता का एक पूर्ण सन्तोषजनक हल प्राप्त करने के उद्देश्य से किया गया नियोजित कार्य है। इसमें मात्र तथ्यों का संग्रह करना या किसी अधिकृत विद्वान के विचारों की तर्करहित स्वीकृति निहित नहीं है, वरन् यह विचारशील चिन्तन की प्रक्रिया है।

❖ समस्या समाधान के चरण

बॉसिंग ने समस्या समाधान प्रविधि के निम्नलिखित सोपान बताए हैं–

(I) कठिनाई या समस्या की अभिस्वीकृति,

(II) कठिनाई की समस्या के रूप में व्याख्या,

(III) समस्या समाधान के लिए कार्य करना।

(IV) तथ्यों का संग्रह करना, (V) तथ्यों का संगठन करना, (VI) तथ्यों का विश्लेषण करना, (VII) निष्कर्ष निकालना, (VIII) निष्कर्षो को प्रयोग में लाना।

समस्यात्मक परिस्थिति का कक्षा शिक्षण में प्रयोग करते समय समस्या का चयन बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए जैसे – 1. समस्या जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक हो। 2. यह छात्रों को स्वतः चिन्तन हेतु प्रेरित करे। 3. छात्रों की अवस्था तथा स्तर के अनुरूप हो। 4. समस्या किसी निश्चित विषयवस्तु तथा लक्ष्य से सम्बन्धित हो। 5. यह स्पष्ट तथा बोधगम्य हो।

समस्या समाधान शिक्षण के चरण

जेम्स एम० ली (James M- Lee) ने समस्या समाधान शिक्षण के निम्नलिखित चरण बताए है – 1. समस्या का चयन करना 2. यह समस्या क्यों है? 3. समस्या को पूर्ण करना 4. समस्या का हल निकालना 5. समाधान का प्रयोग ।

इस उपागम में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाएँ सम्मिलित रहती है। छात्र के समक्ष ऐसी समस्यात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जिसमें वह स्वयं चिन्तन, तर्क तथा निरीक्षण के माध्यम से समस्या का हल ढूंढ सके। संस्कृत शिक्षण में इसका प्रयोग छात्रों के समक्ष व्याकरण के सूत्रों का प्रस्तुतीकरण करते तथा समस्यापूर्ति हेतु कतिपय पंक्ति अथवा एक पंक्ति देकर किया जा सकता है।

4. प्रायोजना कार्य

प्रायोजना कार्य करने के लिए छात्रों के समक्ष कुछ समस्याएँ प्रस्तुत की जाती है और उनको इस बात की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है, कि वे समस्या का समाधान करने के लिए आँकड़े तथा अन्य सम्बन्धित सामग्री एकत्रित करें। इसमें जो समस्या छात्रों को दी जाती हैं वह यभासम्भव जीवन के यार्थथ से सम्बन्धित होती है।

प्रायोजना विधि का स्वरूप रूसो ने अपनी पुस्तक 'एमील' में, फ्रॉबेल ने अपनी पुस्तक 'एजूकेशन ऑफ मैन' में शिक्षा के लिए क्रियाओं को बल देकर किया है। इसी प्रकार विलियम कॉर्बेट ने 'एडवाइस टू यंग मैन' नामक पुस्तक में अपने स्वयं के बच्चों के लिए ग्रामीण प्रायोजनाओं (Rural Projects) का वर्णन किया है। प्रायोजना विधि का प्रयोग सबसे पहले व्यावसायिक क्षेत्र में किया गया। सामान्य शिक्षा के क्षेत्र में इस विचारधारा का श्रेय अमरीका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय के शिक्षा शास्त्र के प्रोफेसर जॉन डीवी को है, किन्तु पद्धति के रूप में सन् 1918 में डीवी के प्रयोजनवाद के सिद्धान्तों पर इसके निर्माण तथा विकास का श्रेय विलियम किलपैट्रिक (William Kilpatrick) को जाता है। ''पार्कर के शब्दों में– ''प्रायोजना, कार्य की एक इकाई है जिसमें छात्रों को कार्य की योजना और सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।

प्रायोजना कार्य के सिद्धान्त

प्रायोजना कार्य में क्रियाशीलता, उपयोगिता, रोचकता, उद्देश्यों का निर्धारण, वास्तविकता, स्वतन्त्रता, समन्वयता, सामाजिकता, मित्तव्ययता तथा अनुभव आधारित प्रयोग आदि सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

प्रायोजना कार्य के प्रकार

प्रायोजना कार्य को विशेषतः दो भागों में बाँटा जा सकता है व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रायोजना कार्य। किलपैट्रिक ने इसके चार प्रकार बताए हैं कलात्मक, समस्यात्मक, रचनात्मक एवं अभ्यास आधारित प्रायोजना कार्य। संस्कृत शिक्षक संस्कृत में अनेक प्रायोजना कार्य छात्रों को देकर उनकी रुचि इस विषय में बढ़ा सकते हैं।

प्रायोजना कार्य के सोपान

I- परिस्थिति का निर्माण

II- प्रायोजना का चयन एवं उद्देश्य निर्धारण

III- प्रायोजना का कार्यक्रम बनाना

IV- प्रायोजना को व्यावहारिक रूप देना

V- प्रायोजना का मूल्यांकन

VI- प्रायोजना का विवरण

5. दल शिक्षण

दल शिक्षण शैक्षणिक संगठन का एक ऐसा रूप होता है जिसमें कक्षा में एक अध्यापक के स्थान पर विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ अध्यापक एवं उनके सहायक होते हैं और ये सब मिलकर प्रभावी रूप से शिक्षण कार्य करते हैं। इसे कुछ विद्वानों ने समूह शिक्षण (Team Teaching) तथा सहकारिता शिक्षण (Cooperative Teaching) आदि नाम भी दिए हैं। वर्तमान समय में शिक्षा तकनीकी के विकास के साथ–साथ शिक्षण में नवीनतम उपकरणों की उपयोगिता को देखते हुए शिक्षाशास्त्रियों ने 'दल शिक्षण' को कक्षा में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को भली–भाँति संचालित करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन स्वीकार किया है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के विद्यालयों में

लगभग 50 वर्षों से दल शिक्षण पद्धति का प्रयोग कक्षाओं में किया जा रहा है। भारतीय विद्यालयों में भी दल शिक्षण के महत्त्व को देखते हुए इसके प्रयोगों पर बल दिया रहा है।

दल शिक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए कार्लो ऑलसन ने कहा है कि, ''यह एक ऐसी शैक्षणिक परिस्थिति है जिसमें अतिरिक्त ज्ञान व कौशल से युक्त दो या अधिक अध्यापक पारस्परिक सहयोग से किसी शीर्षक के शिक्षण की योजना बनाते हैं तथा एक ही समय में एक छात्र समूह को विशिष्ट अनुदेशन देने हेतु लचीले कार्यक्रम तथा सामूहिक विधियों का प्रयोग करते हैं।"

दल का गठन–दल शिक्षण करते समय एक साथ कितने सदस्यों को रखा जाए यह विद्यालय के स्तर, विद्यालय में उपलब्ध सुविधाएँ तथा विषय पर निर्भर करता है। सामान्यतः एक दल में प्रधानाध्यापक, अध्यापक (वरिष्ठ), सहायक अध्यापक, प्रयोगशाला सहायक, तकनीशियन तथा लिपिक को सम्मिलित किया जाता है। दल शिक्षण उपागम संस्कृत शिक्षण को रोचक बनाने के लिए भी उपयोगी है।

दल का गठन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

I- एक ही विभाग के शिक्षकों का दल–जैसे एक विद्यालय में संस्कृत के तीन अध्यापक हैं वह तीनों अध्यापक 'दल शिक्षण' हेतु एक साथ मिलजुलकर कार्य करेंगे। इनके साथ तकनीशियन अथवा लिपिक आदि भी आवश्यकतानुसार रहेंगे।

II- एक ही संस्था के विभिन्न विभागों के शिक्षकों का दल इस शिक्षक दल का उपयोग प्रायः ऐसे विषयों के लिए किया जाता है जो आपस में सम्बद्ध हो जैसे– सामाजिक विज्ञान हेतु इतिहास, भूगोल तथा नागरिक शास्त्र के अध्यापकों को दल में सम्मिलित किया जाए। इसी प्रकार संस्कृत, हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं के अध्यापकों का दल गठित कर संस्कृत शिक्षण करवाया जाए। इस दल का प्रयोग प्रशिक्षण संस्थाओं हेतु अधिक लाभदायक है।

III- विभिन्न संस्थाओं के एक ही विभाग के शिक्षकों का दल –जब अपने विद्यालय में एक विषय का एक ही अध्यापक हो तब दूसरे विद्यालयों से उस विषय विशेष के अध्यापकों को आमन्त्रित कर दल का गठन किया जाए तथा छात्रों को 'दल शिक्षण' के माध्यम से प्रभावशाली शिक्षकों से पढ़ने का अवसर प्रदान किया जाए।

दल शिक्षण की कार्य प्रणाली

दल शिक्षण अनेक प्रकार से किया जाता है, अतः इसकी एक सुनिश्चित कार्यप्रणाली का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है, तथापि यहाँ इसकी कार्यप्रणाली का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है। इसकी प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

1) योजना बनाना –दल शिक्षण की प्रक्रिया का यह प्रथम सोपान है। इसमें शिक्षण हेतु योजना तैयार की जाती है (i) विषय का निर्धारण, (ii) उद्देश्यों का निर्धारण, (iii) व्यवहार परिवर्तनों का लेखन, (iv) छात्रों के पूर्व ज्ञान को पहचानना, (v) शिक्षण के लिए एक अनुमानित रूपरेखा तैयार करना, (vi) शिक्षकों के कौशल तथा योग्यतानुसार कार्य विभाजन, (vii) अनुदेशन का स्तरीकरण करना, (viii) शिक्षण समूह का चयन करना, (iÛ) छात्रों की उपलब्धियों के मूल्यांकन के तरीकों का निर्धारण इस सम्पूर्ण योजना में नमनीयता अपनाई जाती है।

2) व्यवस्था करना योजना के बाद उसकी क्रियान्विति हेतु छात्रों की कठिनाइयों तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए व्यवस्था की जाती है। इसमें निम्नलिखित क्रियायें सम्मिलित होती है (i) उपयुक्त सम्प्रेषण व्यूह का चयन करना (ii) अनुदेशन के स्तरीकरण हेतु छात्रों से कुछ प्रश्न पूछना। (iii) अनुभवी अध्यापक द्वारा अगवानी व्याख्यान (Lead Lecture) प्रस्तुत करवाना। (iv) अन्य अध्यापकों द्वारा अगवानी व्याख्यान के आधार पर अनुवर्ती कार्य (Follow up work) करवाना। (v) छात्रों को पुनर्बलित करना। (vi) छात्रों की गतिविधियों का पर्यवेक्षण करना। (vii) छात्रों से कक्षाकार्य तथा अभ्यास कार्य करवाना। (viii) छात्रों को गृहकार्य देना।

3) मूल्यांकन करना–दल शिक्षण प्रक्रिया के अन्तिम सोपान में छात्रों की उपलब्धियों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। इसके लिए निम्नलिखित क्रियाएं की जाती है– (1) छात्रों की उपलब्धियों तथा उद्देश्यों की प्राप्ति के विषय में निर्णय (ii) उपलब्धियों के स्तर का मूल्यांकन करना। लेना। (iii) इसके लिए लिखित तथा मौखिक दोनों ही तरह की परीक्षाएं ली जाती है। (iv) छात्रों की कमियों तथा कठिनाइयों का निदान करके उपचार किया जाता है। (v) मूल्यांकन के आधार पर योजना तथा व्यवस्था के सोपानों में सुधार किया जाता है।

6. पर्यवेक्षण अध्ययन

पर्यवेक्षण अध्ययन शिक्षण की एक ऐसी पद्धति है जिसमें परम्परागत शिक्षण के दोषों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। इसमें शिक्षक अध्यापन करने के स्थान पर पथप्रदर्शक की भूमिका निभाता है। कुछ विद्वान इसे निर्देशित अध्ययन विधि (Directed Study Method) भी कहते हैं।

क्लॉसमीयर ने पर्यवेक्षण अध्ययन की परिभाषा देते हुए कहा है "पर्यवेक्षण अध्ययन कालांश में छात्र, अध्यापक द्वारा दिये गये कार्य, छात्रों द्वारा की गई क्रियाओं तथा विभिन्न प्रकार की व्यक्तिगत योजनाओं पर कार्य करते हैं तब अध्यापक प्रत्येक छात्र की सहायता करता है। शैक्षिक कालांश का आधा और कभी–कभी आधे से भी अधिक कालांश पर्यवेक्षण अध्ययन हेतु और शेष वाद–विवाद व्याख्या आदि के लिए प्रयोग किया जाता है।''

इस पद्धति के प्रयोग हेतु मुख्यतः चार सोपानों का अनुसरण किया जाता है–

1. अध्ययन कार्य का निर्धारण – इसमें शिक्षक छात्रों के समक्ष प्रकरण की प्रस्तावना का प्रस्तुतीकरण कर प्रकरण के अनेक पक्षों को श्यामपट्ट पर लिखता है तथा उससे सम्बन्धित विभिन्न साहित्य की जानकारी देता है। छात्रों को उस प्रकरण के पक्षों का सामूहिक रूप से, वर्गों में विभक्त कर अथवा व्यक्तिगत रूप से अध्ययन करने का कार्य सौंपता है।

2. अध्ययन के लिए निर्देश– कार्य वितरण के बाद छात्रों को अध्यापक के द्वारा सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन कैसे किया जाए, यह साहित्य कहाँ–कहाँ उपलब्ध होगा तथा छात्रों को प्रकरण से सम्बन्धित पक्षों के बारे में क्या लिखना है इसके लिए शिक्षक द्वारा श्यामपट्ट पर निर्देश दिए जाते हैं।

3. शिक्षक द्वारा पर्यवेक्षण – इस सोपान में अध्ययनरत छात्रों के क्रियाकलापों का अवलोकन अध्यापक द्वारा किया जाता है एवं उनकी शंकाओं तथा उनके द्वारा लिखी गईटिप्पणियों पर मार्गदर्शन करता है।

4. श्यामपट्ट सार एवं आवृत्ति कार्य – छात्रों द्वारा अध्ययन तथा कक्षा में चर्चा समाप्त करने के बाद शिक्षक आवृत्ति प्रश्नों को पूछकर श्यामपट्ट पर मुख्य बिन्दु संक्षेप में लिखता है।

7. संगणक (कम्प्यूटर) पर आधारित शिक्षण प्रतिमान

भाषा प्रयोगशाला में संगणक एक नई उपलब्धि है। इसका प्रयोग अनेक क्षेत्रों में हो रहा है। यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बनता जा रहा है। यह यन्त्र मशीनी अनुवाद, कृत्रिम संश्लेषण, पाठ विश्लेषण, कोश निर्माण, विज्ञान आदि कई क्षेत्रों में सार्थक रूप से उपयोग में आ रहा है। भाषा शिक्षण में भी इसकी विशेष भूमिका है। नई भाषा सीखने के उत्सुक छात्र इसकी सहायता से प्रभावी रूप में और कम समय में इसके माध्यम से भाषा सीख सकते हैं, क्योंकि इसके द्वारा उन्हें सूचनाओं की प्रतिपुष्टि (Feedback) तत्काल हो जाती है त्रुटियों की विस्तृत जानकारी सम्भव है। छात्रों को भाषा दक्षता सम्बन्धी सूचना उपलब्ध हो सकती है और इन सब सूचनाओं के आधार पर छात्र विशेष को आवश्यकतानुसार पाठ निर्देश और पाठ अभ्यास मिल सकते हैं।

भाषा शिक्षण के लिए (संगणक) कम्प्यूटर में निम्नलिखित योग्यताओं का होना आवश्यक है—

1. संगणक समृद्ध स्मृतिकोश—अच्छे भाषिक पाठ के लिए एक समृद्ध स्मृतिकोश की आवश्यकता होती है। प्रतिप्राप्ति के कई स्तर त्रुटि विश्लेषण में अच्छे ढंग से समर्थ और व्याकरणिक विवरण के एक अच्छे विधान के साथ बीस वाक्यों वाले अभ्यास के लिए हमें 30 लाख सूचना अंश बिट्स ऑफ इन्फार्मेशन चाहिए। कम्प्यूटर की तकनीकी शब्दावली में इसके लिए 375 किलोबाइट की अपेक्षा रहती है।

2. गति की तीव्रता— कम्प्यूटर साधित भाषा पाठ के लिए यह आवश्यक है, कि छात्रों के प्रत्युत्तर की स्वीकृति उचित प्रतिप्राप्ति नए प्रश्नों के चुनाव आदि में कम्प्यूटर कई क्षण न लगाए।

3. संगणक (कम्प्यूटर) भाषा की सक्षमता—कम्प्यूटर की भाषा वह भाषा होती है जिसके सहारे प्रोग्रामर मशीन से बात करता है। इस भाषा को इतना सक्षम होना चाहिए कि वह छात्रों के प्रत्युत्तर का भाषिक विश्लेषण कर सके यथा वह शब्द से उसके उपसर्ग और प्रत्यय निकाल सके, सही शब्द क्रम की पहचान कर सके। कोशीय त्रुटियों को वर्तनी की अशुद्धियों से अलग कर सके। यह सब गुण संस्कृत भाषा में विद्यमान हैं।

4. सहज कुंजीपटल – टाइपराइटर की भाँति इसके कुंजीपटल में अक्षरों और मात्राओं की एक सही वैज्ञानिक और प्रभावी व्यवस्था होनी चाहिए और अंकों में 0 से 9 तक की ।

इस शिक्षण प्रतिमान का प्रतिपादन सन् 1965 में लरिन्स स्टाल तथा डेनियल किस ने किया। इस प्रतिमान में कम्प्यूटर शिक्षक का स्थान ग्रहण कर लेता है और फिर वहाँ निर्णय निश्चित करता है तथा शिक्षण प्रदान करता है। इस प्रतिमान को सबसे जटिल प्रतिमान माना जाता है। इसमें सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया को दो स्तरों में विभाजित किया जाता है– (1) पूर्व शिक्षण काल तथा (2) शिक्षण काल। पहले के अन्तर्गत विशिष्ट छात्र के लिए विशिष्ट कार्यक्रम का निर्माण किया जाता है तथा दूसरे बिन्दु के अन्तर्गत निश्चित कार्यक्रम क्रियान्वित किये जाते हैं। इस प्रतिमान में मुख्यतः तीन तत्व निहित होते है– (1) विद्यार्थी का पूर्व व्यवहार, (2) अनुदेशन के उद्देश्यों का निर्धारण, (3) शिक्षण कक्षा

विद्यार्थी के पूर्व व्यवहारों तथा अनुदेशन के उद्देश्यों के अनुसार कम्प्यूटर शिक्षण योजना का चयन किया जाता है। विद्यार्थियों की निष्पत्तियों का निरीक्षण किया जाता है। यदि परिणाम सन्तोषजनक होते हैं तब दूसरी शिक्षण योजना प्रस्तुत की जाती है। इस प्रतिमान में व्यक्तिगत विभिन्नताओं का विशेष रूप से ध्यान रखा जाता है। इसमें शिक्षण और निदान की क्रियाएँ एक साथ ही होती है। निदान के आधार पर उपचारात्मक अनुदेशन प्रदान किया जाता है।

8. अभिक्रमितानुदेशन उपागम

शिक्षण प्रक्रिया में शिक्षक और छात्र के मध्य अन्तःक्रिया अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। समुचित रूप से अन्तक्रिया न होने पर शिक्षक अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रहता है। समुचित अन्तः क्रिया हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षक अपने छात्रों पर भली–भाँति ध्यान दें किन्तु आज निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या तथा ज्ञान के विविध क्षेत्रों में तीव्र गति से हुए विकास के कारण प्रत्येक छात्र पर शिक्षक ध्यान देने में स्वयं को असमर्थ अनुभव कर रहा है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षण की ऐसी नवीनतम विधियों की खोज की ओर शिक्षा शास्त्रियों का ध्यान आकर्षित हुआ है जिनके द्वारा छात्र स्वयं ज्ञान अर्जित कर सके तथा उसे शिक्षक की प्रतिक्रिया भी प्राप्त हो सके। इस क्षेत्र में बहुत सीमा तक सफलता भी मिली है। उन्हीं नवीनतम शिक्षण पद्धतियों में एक है 'अभिक्रमित अनुदेशन'।

आर० एविल के अनुसार, ''अभिक्रमित अनुदेशन मात्र स्वाध्याय हेतु निर्मित पाठ्यवस्तु ही नहीं है, अपितु यह एक शिक्षण प्रविधि भी है।

अभिक्रमितानुदेशन की विशेषताएँ

☐ इसमें कठिन विषय को छोटे–छोटे भागों में बाँटकर छात्रों के लिए सरल और सुग्राह्य बनाया जाता है।

☐ यह व्यक्तिगत तथा पत्राचार द्वारा पढ़ने वाले छात्रों के लिए अधिक उपयोगी है।

☐ यह स्वशिक्षण की पद्धति है जिसमें पाठ्य–वस्तु कुछ विशिष्ट उद्देश्यों को ध्यान में रखकर की जाती है।

☐ यह छात्रों में अपनी त्रुटियों, क्षमताओं, योग्यताओं तथा गति का अध्ययन कर मूल्यांकन के अवसर प्रदान करती है।

☐ इसमें शिक्षक की अनुपस्थिति में पाठ्यवस्तु अत्यन्त तार्किक एवं नियंत्रित छोटे खण्डों में बांटकर छात्रों के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

☐ यह दृश्य–श्रव्य साधनों का प्रयोग न होकर अनुदेशन तकनीकी का एक अंग है।

☐ इसमें छात्र के समक्ष श्रृंखलाबद्ध विषयवस्तु इस प्रकार प्रस्तुत की जाती है। कि एक खण्ड के समाप्त होने पर नये खण्ड के विषय में जानने की जिज्ञासा छात्र में बनी रहती है। जैसे पंचतंत्र, हितोपदेश, रामायण, महाभारत आदि में भी हमें देखने को मिलती है।

अभिक्रमितानुदेशन के सिद्धान्त

1. लघु पदों का सिद्धान्त, 2. सक्रिय सहयोग का सिद्धान्त, 3. प्रतिपुष्टि का सिद्धान्त 4. स्वगति का सिद्धान्त, 5. स्व–मूल्यांकन का सिद्धान्त। इन सिद्धान्तों के अनुसार अधिगम के समय छात्र पांच क्रियाओं से गुजरते है–प्रथम चरण में वह फ्रेम को पढ़ता है, द्वितीय चरण में फ्रेम का प्रत्युत्तर लिखता है, तृतीय चरण में प्रत्युत्तर की जाँच कर प्रतिपुष्टि प्राप्त करता है। इसके बाद वह आगे बढ़ता है तथा अन्त में वह अपने प्रत्युत्तरों के प्रतिवेदन का मूल्यांकन करता है। अभिक्रमित अधिगम हेतु अनुदेशन देने के लिए अनेक प्रकार के अभिक्रम लाये जाते हैं जो

प्रमुखतः निम्नलिखित हैं–

अभिक्रमित अधिगम के प्रकार

1. रेखीय अभिक्रम

2. शाखीय अभिक्रम

3. मैथेटिक्स अभिक्रम

4. स्व निदेशित अभिक्रम

5. कम्प्यूटर आधारित अभिक्रम

9. संग्रन्थन उपागम

आधुनिक वैज्ञानिक युग में भाषा शिक्षण करते समय 'वर्णों' व शब्दों के स्थान पर 'वाक्यों' को अधिक महत्त्व दिया जा रहा है। भाषा वैज्ञानिकों ने इसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया है कि शब्दों का यथार्थ अर्थ वाक्य में ही उपलब्ध होता है। अतः संस्कृत शिक्षण के नवीनतम उपागमों का अन्वेषण करते हुए शिक्षाशास्त्रियों ने इसे स्वीकार किया है, कि वाक्यों को आधार बनाकर संस्कृत का ज्ञान सरलतम ढंग से प्रदान किया जा सकता है। एतदर्थं वाक्यों के संग्रन्थन बनाए जाते हैं। संग्रन्थनों को बनाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि एक तरह के संग्रन्थन में एक ही प्रकार की विशेषता रखने वाले वाक्यों को स्थान दिया जाए।

'संग्रन्थन' उपागम को 'संरचनात्मक उपागम' अथवा 'वाक्य गठन उपागम' के नाम से भी जाना जाता है। अंग्रेजी में इसे Structural Approach कहते हैं। भाषा शिक्षण को सफल बनाने की दृ ष्टि से प्रत्यक्ष विधि (Direct Method) का प्रयोग संस्कृत व अंग्रेजी में विद्यालयों में किया जा रहा है। अंग्रेजी में प्रत्यक्ष विधि बहुत सफल रही है। संस्कृत शिक्षण हेतु भी यह लाभदायक है, किन्तु इसका प्रयोग हर स्तर के लिए उपयोगी नहीं है। इसका स्पष्ट कारण है कि संस्कृत दैनिक व्यवहार की भाषा नहीं है तथा विद्यालयों में यह उपेक्षित भी है। हर स्तर पर संस्कृत शिक्षण को रोचक व सुग्राह्य बनाने हेतु तथा संस्कृत के क्रमबद्ध व्याकरण के नियमों का ज्ञान प्रदान करने के लिए संग्रन्थन उपागम सर्वाधिक उपयुक्त है।

संग्रन्थन उपागम की विशेषताएँ–

- ☐ इसमें भाषा शिक्षण की मनोवैज्ञानिक शैली को प्रयोग में लाया जाता है। बालक पहले कोई भाषा 'सुनता' है उसके पश्चात् बोलना सीखता है। इस उपागम के द्वारा संस्कृत के छोटे व सरल वाक्यों को छात्रों को सुनाया जाता है। निरन्तर वाक्यों को सुनने से छात्रों में शुद्ध मौखिकाभिव्यक्ति का भी विकास होता है। इस उपागम की यह विशेषता होती है, कि संस्कृत की कक्षा में केवल संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया जाता है। परिणामतः छात्रों का ध्यान संस्कृत भाषा पर ही केन्द्रित रहता है। उसकी ध्वनियाँ ही उसके कानों में बार–बार पड़ती है जिससे बालक को संस्कृत सीखने में सहायता मिलती है। छात्र संस्कृत सुनने, शुद्ध बोलने व धीरे–धीरे पढ़ने व लिखने में दक्ष हो जाता है।

- ☐ इस प्रक्रिया में बालक सक्रिय रहते हैं, क्योंकि नवीन संग्रन्थन प्रस्तुत कर शिक्षण को रोचक बनाया जाता है तथा छात्रों से भी नये–नये संग्रन्थन बनवाए जाते हैं। इससे बालक का मस्तिष्क कार्य में संलग्न रहता है इस पद्धति से उसे व्याकरण के नियम सरलता से समझ में आ जाते हैं।

- ☐ संग्रन्थन उपागम में छोटे–छोटे वाक्यों में वार्तालाप करवाया जाता है। इससे बालक की मौखिक अभिव्यक्ति भी सशक्त होती है।

- ☐ इस उपागम में व्याकरण के नियमों को बिना सोचे–समझे रटवाया नहीं जाता, अपितु उदाहरण वाक्य रचनाओं को आमने–सामने रखकर उसकी बार–बार आवृत्ति करवायी जाती है इसमें व्याकरण के नियम का व्यावहारिक ज्ञान छात्रों को हो जाती है।

- ☐ संग्रन्थन उपागम में थॉर्नडाइक के सीखने के नियमों में से अभ्यास के नियम को विशेषतः प्रयोग में लाया जाता है।

- ☐ इसमें छात्रों का उच्चारण शुद्ध होता है, क्योंकि इसमें श्रवण कौशल व भाषण कौशल के विकास पर अधिक बल दिया जाता है।

- ☐ यह छात्रों के शब्द भण्डार में वृद्धि करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है, क्योंकि इसमें छात्रों की वास्तविक परिस्थितियों से सम्बन्धित शब्दों का प्रयोग संग्रन्थन बनाने के लिए किया जाता है।

□ यह उपागम सभी स्तरों के छात्रों को संस्कृत पढ़ाने हेतु उपयोगी है किन्तु संग्रन्थनों का निर्माण करते समय छात्रों के स्तर का ध्यान रखना आवश्यक है।

- भाषा कौशल

भूमिका

किसी भी भाषा के अध्ययन हेतु उसके सामान्य उद्देश्य अवश्य होने चाहिए। उद्देश्य के बिना कोई भी कुछ भी नहीं कर पता है। भाषा के अध्ययन और अध्यापन के लिए उद्देश्य का होना अत्यंत आवश्यक है। उद्देश्यों को दो भागों में विभक्त किया गया है सामान्य एवं विशिष्ट उद्देश्य प्रायः छात्रों के लिए श्रवण, भाषण, लेखन, पठन चारों प्रकार के कौशलों में दक्षता एवं प्रवीणता के लिए भाषा के प्रधान उद्देश्य बताए गए हैं। यह चारों कौशल ही भाषा के सामान्य उद्देश्य हैं। जिसमें लेखन कौशल के अधिगम हेतु भाषा पर अधिकार संपादित करके उसका सम्यक प्रकार से अध्यापक के द्वारा उसमें व्यवहार रूप में प्रयोग करने के लिए प्रयत्न करवाया जाता है। इसी प्रकार चारों कौशलो में निपुणता प्राप्त करने के लिए भाषा का सांकेतिक प्रयोजन होता है। भाषा भाव के उद्वेग से प्रेरित संभाषण प्रक्रिया को नैपुण्य प्रदान करता है। इसके बाद उसमे साहित्य का रस उत्पन्न होता है। तत्पश्चात सर्जनात्मक शक्ति का समुत्पन्न या विकास होता है तथा इस प्रकार उद्दीपन प्रयोजन का संपादन ही अध्यापक का कर्तव्य होता है। प्रशिक्षण स्तर में विशिष्ट भाव के अध्यापन में शिक्षाशास्त्रियों के द्वारा इन लक्षिताधिगम विशेषताओं को स्वीकार किया जाता है। जो निम्नलिखित है–

1. ज्ञानात्मक
2. अवगाहनात्मक
3. अनुप्रयोगात्मक
4. संश्लेषाणात्मक
5. मूल्यांकनात्मक

भाषा को सीखने का स्वभाविक एवं मनोवैज्ञानिक क्रम श्रवण–भाषण–पठन–लेखन ये भाषा सीखने के महत्वपूर्ण चार कौशल हैं।

- श्रवण कौशल एवं इसके विकास की विधियां

❖ श्रवण कौशल

श्रवण कौशल का अर्थ–सुनना, देखना और बोलना आदि नैसर्गिक क्रियायें प्राणियों को प्रकृति प्रदत्त हैं। इनमें सुनना प्रथम क्रिया है। कानों के माध्यम से जो ध्वनियाँ सुनी जाती हैं अथवा श्रवणेन्द्रियों द्वारा जो कुछ सुना जाता है, वह सुनना कहलाता है। यह स्वाभाविक एवं नैसर्गिक क्रिया है, जबकि श्रवण चिन्तन से सम्बद्ध बोध अथवा समझ की क्रिया है और प्रथम भाषा कला है। भाषा शिक्षण के प्रमुख कौशल – श्रवण, पठन, लेखन एवं भाषण है। इसमें श्रवणप्रमुख स्थान रखता है, क्योंकि बहुत से बच्चे सुनते तो हैं परन्तु वे श्रवण नहीं करते। वे ध्वनियों को बिना समझे अथवा ध्वनियों को बिना व्याख्या किए ग्रहण कर लेते हैं। इससे उन्हें इनका समुचित ज्ञान नहीं हो पाता है, जबकि श्रवण में पठन सदृश अधिक चिन्तन करना पड़ता है। डिसेन्ट लिखते हैं ''श्रवण केवल तब घटित होता है, जब छात्र (यह) व्यवस्थित करते हैं और याद करते हैं, जब छात्र (यह) व्यवस्थित करते हैं और याद करते हैं कि क्या सुना गया है।'' इस प्रकार किसी व्यक्ति अथवा ध्वनि यंत्रों द्वारा उत्पन्न सार्थक ध्वनियों को श्रवणेन्द्रियों के माध्यम से अर्थग्रहण अथवा समझने की प्रक्रिया श्रवण कहलाती है। शिक्षा शब्दकोश में श्रवण के अर्थ को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है'' श्रवण व्यक्त अथवा अव्यक्त व्यवहार प्रतिमानों के चयनशील मौखिक एवं लिखित संकेतों को प्राप्त करने के सम्बन्ध में अन्य व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के वार्तालाप पर गहन ध्यान देने की कला है।''

श्रवण के आवश्यक तत्त्व एवं आधार श्रोता में निम्न तत्त्वों का होना आवश्यक है, जिसके माध्यम से पाठक द्वारा कहे गए वाक्यांश का भाव स्पष्ट हो जाए–

I- श्रोता की श्रवणेन्द्रिय (कान) में कोई विकार नहीं हो।

II- श्रोता में भाषा की ध्वनियों, ध्वनि समूहों, शब्दों का ज्ञान होना आवश्यक है।

III- श्रोता में मूल ध्वनियों एवं ध्वनि समूहों में अन्तर करने की योग्यता होनी चाहिये।

IV- श्रोता में सुनने की तत्परता, सुनने में उसकी रुचि एवं अवधान का होना आवश्यक है।

V- श्रोता में धैर्य एवं मनोयोग से सुनने की आदत होनी चाहिए।

VI- श्रोता में सुने हुए का अर्थ एवं भाव समझने की योग्यता होनी चाहिये ।

VII- श्रोता में बोलने वाले के हाव–भाव के अनुसार अर्थ एवं भाव समझने की योग्यता हो।

- श्रवण कौशल का महत्त्व

प्राचीनकाल में सीखने की प्रक्रिया में श्रवण का अत्यधिक महत्त्व था शिक्षण की प्रक्रिया पूर्णरूप से मौखिक थी। पठन–पाठन का समस्त कार्य मौखिक रूप से ही सम्पन्न होता था। श्लोकों, कहानियों आदि के माध्यम से ही सांस्कृतिक विरासत पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती रही थी। लेखन कला, कागज का निर्माण एवं मुद्रण की मशीनों का आविष्कार हो जाने पर शिष्यों ने अपने गुरुओं से श्रवण के उपरान्त कण्ठस्थ की गई विषयवस्तु को रचनाबद्ध किया था। मुद्रित सामग्री के आ जाने से पठन पर अधिक बल दिया जाने लगा और मौखिक पठन के स्थान पर मौन पठन का अधिक प्रचलन हो गया। फिर भी श्रवण का अस्तित्व कम नहीं हुआ है, क्योंकि आज भी विद्यालयों में प्रतिदिन विद्यार्थियों के लिए श्रवण हेतु कई अवसर उपलब्ध हैं, जैसेशिक्षक द्वारा विद्यार्थियों को मौखिक निर्देश देना, मौखिक रूप से गृहकार्य देना, किसी प्रक्रिया का मौखिक वर्णन करना, किसी सम्प्रत्यय की व्याख्या करना तथा छात्रों का ध्यान विषयवस्तु की ओर आकर्षित करने के लिए उदाहरण एवं दृष्टान्त प्रस्तुत करना आदि मुख्य हैं। वर्तमान समय में तकनीकी क्षेत्र में उत्तरोत्तर विकास के कारण रेडियो, टेलीविजन, वीडियो कम्प्यूटर एवं विचार विनिमय के अन्य साधनों के विकसित हो जाने के कारण श्रवण का महत्व और अधिक बढ़ गया है। डिसेन्ट के 'श्रवण प्रशिक्षण श्रवण सम्बन्धी विभेदीकरण विकसित करता है, जो पठन में ध्वन्यात्मक विश्लेषण के लिए आधार के रूप में सहायता करता है।

श्रवण दोष– जब छात्र किसी व्यक्ति या ध्वनियंत्र द्वारा उच्चरित सार्थक शब्दों अथवा ध्वनियों का श्रवण करके अर्थग्रहण करने में असमर्थ रहता है, तो यह श्रवण दोष कहलाता है, जैसे– ब्राह्मणः को ब्रामण सुनना तथा किंकर्तव्यविमूढ़ः को किंकव्यविमूढ़ सुनना आदि।

श्रवणदोष के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं–

I- श्रवणेन्द्रियों में विकार जब श्रवणेन्द्रियों में विकार हो जाते हैं तो बच्चे सुनने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। वे या तो सही सुन नहीं पाते हैं अथवा जो सुनते हैं, गलत सुनते हैं। ऐसी परिस्थिति शिक्षक के लिये एक बहुत बड़ी समस्या होती है और छात्र कक्षा में पठित विषयवस्तु को नहीं समझ पाता है।

II- ध्यान केन्द्रित न होना कई बार बच्चों का ध्यान पढ़ने में नहीं होता है, इस कारण वे पाठ को ठीक प्रकार से सुन नहीं पाते हैं, जो शिक्षक पढ़ा रहा होता है।

III- पाठ्यवस्तु की क्लिष्टता संस्कृत में पाठ्यवस्तु में कभी–कभी इतनी क्लिष्टता आ जाती है कि वह बच्चों को समझ में नहीं आती है। इससे छात्र घबरा जाते हैं। अतः वे पाठों के श्रवण में लापरवाही करते हैं।

IV- मौखिक कार्य का अभाव – संस्कृत शिक्षण में कुछ शिक्षक मौखिक कार्य अधिकतर कम करवाते हैं। अतः छात्रों में शीघ्रता से श्रवण का अभ्यास नहीं हो पाता है।

V- शिक्षकों में रुचि का अभाव – संस्कृत शिक्षण में कुछ शिक्षक मौखिक कार्य बहुधा कम करवाते हैं। अतः छात्रों में शीघ्रता से श्रवण का अभ्यास नहीं हो पाता है।

VI- कक्षा में कठोर नियंत्रण–कुछ शिक्षक बच्चों को अनुशासन में रखने के लिए कठोर नियंत्रण रखते हैं, इस कारण बच्चे भयभीत होकर चुपचाप बैठे रहते हैं। न वे पाठ को ध्यान से सुनते हैं और न ही समझने की कोशिश करते हैं।

VII- एक साथ दो काम–वर्तमान में यह देखने में आ रहा है कि उच्च कक्षाओं की व्याख्यान विधि के अनुकरण के फलस्वरूप निम्न कक्षाओं में भी शिक्षक मौखिक कार्य के साथ ही लिखित कार्य करने के लिए छात्रों को अनुमति दे देते हैं। इससे बहुत हानि होती है। इस प्रकार छात्र न तो भली प्रकार श्रवण ही करते हैं और न लिख ही पाते हैं।

VIII- अशान्त वातावरण–वातावरण अशान्त होने पर श्रवण दोष आना स्वाभाविक है। छात्र आसपास में होने वाले शोरगुल के कारण कक्षा में कथित बात को भली–भाँति श्रवण नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उनका ध्यान शोर की ओर खिंच जाता है। परिणामस्वरूप वह अपना ध्यान पढ़ाई जा रही विषयवस्तु की ओर केन्द्रित नहीं कर पाता है।

IX- पढ़ने में अरुचि कुछ छात्र पढ़ने में कम रुचि लेते हैं। कभी–कभी उनके सामने कुछ ऐसी आकस्मिक परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे उनमें पढ़ने के प्रति अरुचि हो जाती है। परिणामस्वरूप ऐसे छात्र कक्षा में तो आते हैं परन्तु पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु का श्रवण करने का प्रयास नहीं करते हैं।

श्रवण दोषों के निराकरण के उपाय

I- श्रवणेन्द्रियों के विकारों का उपचार– छात्र की श्रवणेन्द्रियों में विकार होने पर शिक्षक को छात्र के अभिभावक को सूचित करके छात्र की श्रवणेन्द्रियों के विकारों की जाँच करानी चाहिए तथा समुचित उपचार करवाना चाहिए। उपचार हो जाने पर छात्र भलीभाँति सुन सकेगा और श्रवण में भी समर्थ हो जायेगा।

II- ध्यान केन्द्रित करना समुचित रूप से श्रवण के लिए बच्चों का ध्यान पाठ्यवस्तु की ओर केन्द्रित करना चाहिए। इसके लिए निम्न कार्य किए जा सकते –

(i) पूर्व ज्ञान पर आधारित प्रस्तावना प्रश्न पूछना।

(ii) श्यामपट्ट पर आकर्षक शीर्षक लिखना।

(iii) पिछले पाठ का संक्षिप्त उल्लेख करना।

iii- क्लिष्ट पाठ्यवस्तु को रोचक बनाना – श्रव्य दृश्य साधनों के प्रयोग से क्लिष्ट पाठ्यवस्तु को रोचक बनाया जा सकता है। विभिन्न प्रविधियों एवं युक्तियों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

iv- मौखिक कार्य को प्रोत्साहन कक्षा में मौखिक कार्य अधिकाधिक कराना चाहिए। मौखिक कार्य के निरन्तर अभ्यास से श्रवणेन्द्रियाँ प्रशिक्षित होती हैं।

v- शिक्षकों द्वारा शिक्षण में रुचि लेना–अध्यापक को कक्षा में रुचि पूर्वक शिक्षण करना चाहिए। यदि अध्यापक रुचि लेकर पढ़ाएगा तो बच्चे भी अध्ययन मेंआनन्द की अनुभूति करेंगे, पाठ में सजीवता आयेगी और शिक्षण प्रभावशाली होगा।

vi- कक्षा में स्वस्थ नियंत्रण – अध्यापक को चाहिए कि वह बालकों को कठोर नियन्त्रण में न रखकर स्वस्थ नियन्त्रण में रखें। उनसे आत्मीयता स्थापित करें। श्री बालकृष्ण जोशी का मत है–''तरुण छात्रों को स्वस्थ नियंत्रण में रखना शिक्षकों पर आधारित एक नैतिक कर्तव्य है।

vii. एक समय में एक ही काम–संस्कृत शिक्षण में अत्यन्त आवश्यक है कि एक समय में एक ही कार्य किया जाये। जब अध्यापक मौखिक कार्य करा रहा हो तो उस समय बच्चों को लिखित

कार्य बिल्कुल न करने दिया जाये। बालकों को केवल ध्यानपूर्वक सुनने का निर्देश दिया जाये ताकि वे केवल ध्यानपूर्वक सुनें और समझें।

viii. शान्त वातावरण की व्यवस्था जब अध्यापक पढ़ा रहा हो तो कक्षा में – किसी भी प्रकार का शोर नहीं होना चाहिए। विद्यालय में शान्त वातावरण रहना चाहिए। इससे छात्रों को पाठ्यवस्तु के श्रवण में अवरोध उत्पन्न नहीं होगा।

iÛ. रुचि एवं जिज्ञासा का विकास–पाठ्यवस्तु को पढ़ाने से पूर्व शिक्षक को उस पाठ्यवस्तु को जानने के लिए छात्रों में जिज्ञासा उत्पन्न कर देनी चाहिए जिससे कि वे रुचिपूर्वक विषयवस्तु को जानने में संलग्न हो जाएँ। इससे वे विषयवस्तु पर ध्यान केन्द्रित रखेंगे और ध्यानपूर्वक श्रवण करेंगे।

श्रवण कौशल के विकास में शिक्षक की भूमिका – विद्यालयों में श्रवण कौशल के विकास का समस्त दायित्व शिक्षकों पर निर्भर करता है। अन्य कौशलों के विकास के साथ–साथ अध्यापक को बालकों में श्रवण कौशल का विकास करने का भी प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए उसे कक्षा में समुचित वातावरण तैयार करना चाहिए। उसे बालकों के श्रवण दोषों का पता लगाकर बालकों की आवश्यकतानुसार सीखने के कार्य समायोजित करने चाहिए तथा श्रवण हेतु समुचित परिस्थितियाँ प्रदान करनी चाहिए।

अध्यापक को बालकों को संस्कृत के नये शब्दों एवं विचारों को सुनने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए साथ ही श्रवण हेतु व्यक्तिगत रूप से सुअवसर प्रदान करने चाहिए। उसे बालकों को सत् साहित्य पढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए। कहानी कथन, नाटकीकरण, गीतों के गायन, श्लोकों एवं कविताओं के पठन आदि के माध्यम से भी श्रवण कौशल का विकास करना चाहिए। बालकों को देखो और कहो अभ्यासों, वाद–विवाद, प्रहेलिका खोजने और विवेचना में संलग्न करके उत्साहित किया जा सकता है। बालकों से औपचारिक रूप से प्रकरणों पर विवेचन कराकर प्रश्न पूछकर योजना बनवाकर, प्रतिवेदन तैयार करवाकर, समालोचन एवं मूल्यांकन आदि करवाकर अन्य बालकों को श्रवण हेतु अवसर प्रदान सकता है। इसके अतिरिक्त ग्रामोफोन, रेडियो, टेलीविजन, टेपरिकॉर्डर वीडियो आदि भी श्रवण कौशल के विकास में उपयोगी हैं।

अध्यापक उपर्युक्त क्रिया– कलापों की सहायता से बालकों को श्रवण कौशल में निपुण बना सकता है।''

श्रवण कौशल विकास की विधियां

- श्रवण तीक्ष्णता
- समुचित सुनना
- व्याख्या एवं श्रुतिगत आत्मीकरण
- विभेदीकरण एवं धारणा

- श्रवण तीक्ष्णता तीव्रता, स्वराघात, लय एवं अवधि के सम्बन्ध में दो श्रवणीय उद्दीपनों के मध्य विभेद करने की किसी व्यक्ति विशेष की योग्यता है। जब किसी श्रोता में यह योग्यता विकसित हो जाती है, तब उसमें श्रवण दक्षता का विकास हो जाता है।।

- समुचित सुनना जब श्रोता किसी विषयवस्तु को ठीक प्रकार से सुनता है। सुनने के पश्चात् याद करके यह व्यवस्थित करता है कि क्या सुना गया है, तब श्रवण घटित होता है। इस प्रकार कोई श्रोता किसी व्यक्ति अथवा ध्वनि यंत्रों द्वारा उत्पन्न सार्थक ध्वनियों को श्रवणेन्द्रियों के माध्यम से अर्थग्रहण करने में समर्थ हो जाता है, तब उसमें श्रवण दक्षता का विकास हो जाता है।

- व्याख्या एवं श्रुतिगत आत्मीकरण – जब कोई श्रोता विषयवस्तु को श्रवण के उपरान्त उसकी व्याख्या करने और उसे आत्मसात करने में समर्थ हो जाता है, तब उसमें श्रवण दक्षता का विकास हो जाता है।

- विभेदीकरण एवं धारण– जब श्रोता सुनी गई विषयवस्तु में से अवाञ्छनीय एवं निरर्थक सामग्री तथा वाञ्छित एवं सार्थक सामग्री को पृथक् करने में समर्थ हो जाता है और वांछित एवं सार्थक सामग्री को धारण कर लेता है। तब उसमें श्रवण दक्षता विकसित हो जाती है।

- पठन कौशल एवं पठन कौशल के विकास की विधियां समस्या एवं निदान

❖ पठन कौशल का अभिप्राय

'पठन' अथवा 'वाचन' शिक्षा का पर्यायवाची माना जाता है। अंग्रेजी में 'रीडिंग' यूरोपीय भाषाओँ में रेडेन, रेटेन आदि शब्द पठन के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, जिनका अर्थ व्याख्या करना, सलाह देना तथा पढना है। संस्कृत में 'वाचनम्' शब्द की व्युत्पत्ति वच् धतु से की जाती है इसका अर्थ पढना, पाठ करना, घोषणा, प्रकथन, उच्चारण आदि है। ग्रामीण क्षेत्रों में 'बांचना' शब्द प्रयुक्त किया जाता है। अगर हम ध्यान पूर्वक देखते हैं तो इन दोनों ही प्रयोगों में 'वाचन' शब्द का अर्थ पढ़ना ही है। पठन एक प्रकार की कला है और इसके विकास के लिए सर्वप्रथम शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि वह इस बात का अवश्य ही ध्यान रखें कि बालक शारीरिक व मानसिक रूप से पढ़ने योग्य हुआ है अथवा नहीं हुआ है। मातृ भाषा को सीखने के क्रम में बालक अनुकरण के माध्यम से अपनी माँ व अपने परिवार से बोलना सिख लेता है, किन्तु किसी भी भाषा के शुद्ध उच्चारण व शुद्ध पठन के लिए बालक को वर्णों के आकार व ध्वनि का सम्यक अभ्यास शिक्षक द्वारा करवाया जाता है।चूँकि संस्कृत एक संश्लेषणात्मक भाषा है तथा इसका शिक्षण सभी विद्यालयों में प्रायः कक्षा 6 से प्रारंभ होता है जब बालक की अवस्था 11–12 वर्ष की होती है तथा वह अपनी मातृभाषा में अभी तक बहुत कुछ पढ़ चुके होते हैं। इस अवस्था में बालक के लगभग सभी वर्ण उच्चारण स्थानों का विकास हो जाता है। केवल विशिष्ट बालक अथवा विशिष्ट प्रकार से बाधित बालकों को छोड़कर लगभग सभी छात्रों के शारीरिक व मानसिक दृष्टि से इस अवस्था में पठन आरंभ के लिए तैयार हो जाते हैं।

अतः शिक्षकों का यह कर्तव्य है कि वह विद्यालय में बालक की पठन क्रिया प्रारम्भ होने से पूर्व निम्न बिन्दुओं पर अवश्य ध्यान दें –

विद्यालय के वातावरण से परिचय करवाना : बालक को विद्यालय के विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों के द्वारा उनकी रुचि का विकास किया जाए जिससे छात्र रुचि पूर्वक अपने कार्यों को करने और विद्यालय एवं शिक्षकों के निर्देशों का पालन करना सीख ले। तत्पश्चात शनै शनै छात्रों के पाठन की क्रिया में प्रयुक्त दृश्य, श्रव्य सामग्रियों का प्रयोग करते हुए छात्रों को पठन के लिए प्रेरित किया जाए जैसे– संस्कृत गीत, चित्र व उनके संस्कृत शब्द, चित्रकला आदि का प्रयोग करते हुए।

पठन संबंधी कुशलताओं का निर्माण : शिक्षक का महत्वपूर्ण कर्तव्य है कि वह छात्रों में इस प्रकार की कुशलता को उत्पन्न की जाए जिससे वह लिखी हुई विषय वस्तु को समझ सके, क्रमबद्ध रूप में उसका ज्ञान प्राप्त कर सके, प्रसंग के अनुसार समझ सके, निष्कर्ष पर पहुंच

सके तथा तुलनात्मक दृष्टि से समझ कर उसकी व्याख्या भी कर सके। अगर देखा जाए तो इसके लिए भाषा ज्ञान और संप्रत्यय निर्माण, श्रव्य बोध, दृष्टि बोध, गति नियंत्रण व पठन के प्रति रुचि का होना अत्यंत ही आवश्यक व महत्वपूर्ण है।

बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का निदानः क्योंकि प्रत्येक छात्र अपने आप में भिन्न होता है तथा व्यक्तिगत विभिन्नता ओं का ध्यान पठन करवाते समय अवश्य ही रखा जाए विशेष प्रकार से जो छात्र शारीरिक व मानसिक दृष्टि से दुर्बल हों, उन्हें कुछ अतिरिक्त समय देकर पठन आरंभ कराना चाहिए।

उपर्युक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए संस्कृत शिक्षण पठन शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित कर सकते हैं जो अग्रलिखित है –

पठन कौशल के उद्देश्य –

पठन की प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन सोपान सम्मिलित होते हैं – वर्णमाला की पहचान करना, अर्थ ग्रहण करना, पाठ्यवस्तु में क्रमबद्धता लाना। अतः इस प्रक्रिया के अनुसार प्रशिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- ध्वनि के प्रतीक वर्णों को देखकर पहचानने की योग्यता उत्पन्न करना।
- ध्वनियों का सम्यक ज्ञान करवाना जिससे छात्र सम्यक उच्चारण स्थान से ध्वनि निकाल सके।
- पठन करते समय प्रत्येक शब्द पर समुचित बल प्रदान करने की योग्यता का विकास करना।
- विराम चिह्नों का ध्यान रखते हुए छात्र पठन करने की योग्यता का विकास करना।
- संधि, समास, प्रत्यय एवं उपसर्ग सहित शब्दों का विश्लेषण करने की योग्यता का विकास करना।
- पठन के साथ अर्थ ग्रहण करने की योग्यता का भी विकास करना।

- वाचन की प्रक्रिया में आरोह, अवरोह, लय, यति, गति आदि का ध्यान रखते हुए भाव के अनुकूल करना।

- पुस्तक में लिखे हुए विचारों को समझ कर अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर पठित विषय वस्तु का संबंध स्थापित कर सके।

- अंत्याक्षरी, वाद विवाद, निबंध लेखन, कथा लेखन, भाषण, चर्चा, परिचर्चा, वार्तालाप आदि पाठ्य सहगामी क्रियाओं के द्वारा छात्रों में पठन में रुचि उत्पन्न करना।

- पठान की क्रिया में पुस्तक को समुचित रूप से हाथ में कैसे पकड़ी जाए यह अत्यंत आवश्यक व महत्वपूर्ण है अतः इसका ज्ञान प्रदान करना।

- पठन कौशल का महत्व

दूसरों के विचारों का सुमित ज्ञान प्राप्त करने के लिए एवं अपने स्वयं के विचारों को आने वाली पीढ़ियों तक पहुंचाने के लिए पठन शिक्षण का अपना विशेष महत्व है। वाल्मीकि, कालिदास, सूर एवं तुलसीदास के साहित्य की रस अनुभूति वन का महत्व पठन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः पाठन शिक्षण का महत्व निम्नलिखित कारणों से है –

संस्कृत भाषा के पठन शिक्षण का अत्यधिक महत्व इस कारण भी है क्योंकि संस्कृत आज सामान्य बोलचाल तथा संपर्क की भाषा नहीं है एवं यह एक अत्यंत प्राचीन किंतु वैज्ञानिक और सांस्कृतिक भाषा है। अतः प्राचीन साहित्य को समझने एवं उसका ज्ञान प्राप्त करने हेतु संस्कृत पठन का विशेष महत्व है।

1. पठन के द्वारा ही किसी भी साहित्य शास्त्र को पढ़कर उसका अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। क्योंकि संस्कृत एक संश्लिष्ट भाषा है अतः इसमें मूल धातु, संधि, समास, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का विश्लेषण किए बिना अर्थ को समझना कभी–कभी असंभव हो जाता है इसके लिए पठन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

2. भाषा अत्यंत वैज्ञानिक है और इस भाषा का ज्ञान किस सीमा तक हुआ है इसकी जांच वाचन के द्वारा की जा सकती है। इसके साथ साथ संस्कृत में उच्चारण का भी विशिष्ट स्थान है जिसे भी बिना पठन के ना तो सीखा जा सकता है और ना ही सिखाया जा सकता है।

4. प्राचीन सभ्यता साहित्य एवं संस्कृति को, देश व विदेश के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए पठन पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अतः निसंदेह इसका महत्व सांस्कृतिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से अत्यंत विशिष्ट है।

5. स्वाध्याय के लिए भी पठन शिक्षण का अत्यंत महत्व है।

6. परस्पर वार्ता, भाषा, संवाद, वाद–विवाद एवं चर्चा इन सभी की सफलता भाषा पर निर्भर है एवं भाषा पर अधिकार वाचन द्वारा ही प्राप्त होता है। अतः स्पष्ट, प्रभावशीलता प्रवाह युक्त पठन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

7. छात्रों में सृजनात्मक प्रतिभा का विकास करने के लिए पठन शिक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

8. मानव की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह एक कल्पनाशील प्राणी है तथा उसकी इस काल्पनिक शक्ति को पठन शिक्षण के माध्यम से एक विशेष संबल प्रदान किया जा सकता है।

9. हम सब जानते हैं कि संस्कृत विश्व की समस्त भाषाओं की जननी है। अतः छात्रों के शब्द भंडार में वृद्धि करने के लिए, और उन्हें सक्रियता प्रदान करने के लिए संस्कृत पठन शिक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

10. पठन शिक्षण से व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास होता है।

11. सद वृत्तियों का विकास करने के लिए पठन शिक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण होता है।

12. पठन की योग्यता का विकास होने से भाषा के अन्य कौशलों का भी विकास होता है जैसे लेखन, मौखिक अभिव्यक्ति, अर्थ ग्रहण इत्यादि।

13. अवकाश का सदुपयोग किया जा सकता है।

14. छात्र सजग रहते हैं।

पठन के प्रकार – पठान की शैली के आधार पर पठन का वर्गीकरण निम्नलिखित किया जा सकता है –

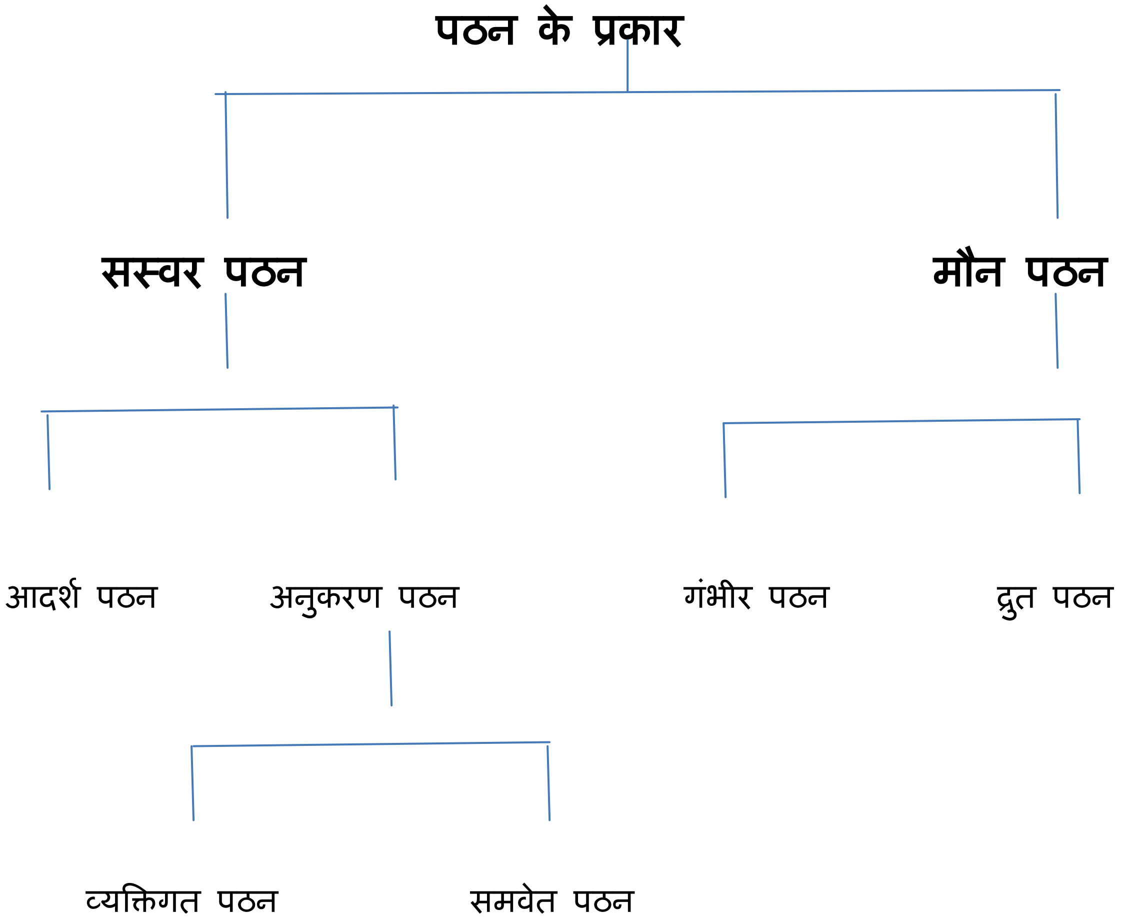


सस्वर पठन – स्वर सहित किया जाने वाला पठन सस्वर पठन कहलाता है। अर्थात लिखित भाषा में व्यक्त भाव एवं विचारों को समझने के लिए ध्वनि के साथ उच्चारण करके पढ़ते हैं तो वह सस्वर पठन कहलाता है।

सस्वर पठन के उद्देश्य :–

- शब्दों की ध्वनियों का ज्ञान कराने के साथ शुद्ध उच्चारण की योग्यता का विकास करना|
- पठन के साथ अर्थ का भी बोध कराना|

- लय, यति, गति, आरोह, अवरोह तथा विराम चिह्न का ध्यान रखते हुए सस्वर पठन करने की योग्यता का विकास करना|
- सस्वर पठन में रुचि का विकास करना|
- संस्कृत साहित्य के प्रति रुचि का विकास करना|

सस्वर पठन के गुण –

- वाचन करते समय शब्द एवं वर्ण के उच्चारण की शुद्धता पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए|
- वाचन ना तो बहुत मंद गति से होना चाहिए और ना ही बहुत तीव्र गति से अर्थात वाचन में प्रवाह का ध्यान रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है।
- पढ़ते समय पढ़े गए शब्दों का अर्थ ग्रहण भी करते रहना चाहिए|
- पठन में विराम चिह्नों का ध्यान रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है इसके अभाव में अर्थ का अनर्थ हो जाएगा|
- व्यक्ति को रुचि पूर्वक पढ़ना चाहिए|
- प्रत्येक अक्षर और शब्द पर यथा योग्य बल देकर अर्थात उपयुक्त बलाघात के साथ पढ़ना चाहिए|
- सस्वर पठन के समय पुस्तक बाएं हाथ में रखनी चाहिए तथा आंखों से 12 इंच की दूरी पर 45 डिग्री का कोण बनाती हुई पकड़ी जानी चाहिए|
- सस्वर वाचन में सदैव स्वर में उतार चढ़ाव, आरोह अवरोह होना ही चाहिए|
- सस्वर वाचन स्पष्ट व प्रभाव उत्पन्न करने वाला होना चाहिए।

आदर्श वाचन – कक्षा कक्ष में अध्यापक विषय वस्तु को स्वयं पठन के द्वारा छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करता है तो उसे आदर्श वाचन कहते हैं।। आदर्श वाचन के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- छात्रों को नवीन विषय वस्तु का परिचय देना|
- छात्रों के समक्ष वाचन का मानदंड प्रस्तुत करना|
- छात्रों को कहां तक और क्या पढ़ना है यह समझाना|
- छात्रों को पढ़ने के लिए उत्सुक करना एवं उनमें झिझक व संकोच की भावना को दूर करना|

अनुकरण वाचन – अध्यापक जब विषय वस्तु का आदर्श वाचन करते हैं उसके पश्चात उसी विषय वस्तु का छात्रों के द्वारा अनुकरण वाचन किया जाता है। अर्थात जब छात्र अध्यापक के द्वारा किए गए आदर्श वाचन के अनुरूप वाचन करते हैं अथवा करने का प्रयास करते हैं तो उसे अनुकरण वाचन कहा जाता है। इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं –

व्यक्तिगत पठन – अध्यापक कक्षा कक्ष में जब नवीन विषय वस्तु का आदर्श वाचन करते हैं उसके पश्चात वह सभी छात्रों से एक–एक करके उस पाठ या विषय वस्तु के थोड़े–थोड़े अंश का अनुकरण वाचन कराया जाता है। जब छात्र व्यक्तिगत वाचन कर रहे होते हैं उस समय अध्यापक का यह महत्वपूर्ण कर्तव्य होता है कि वह इस बात का अवश्य ध्यान रखें कि छात्रों के पुस्तक पकड़ने का ढंग, उनके खड़े होने का ढंग एवं आंखों से पुस्तक की दूरी ठीक है अथवा नहीं। वाचन करते समय छात्रों के उच्चारण पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए, अध्यापक को विशेष रूप से इस बात का ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि वाचन के मध्य में अशुद्ध उच्चारण को शुद्ध कराने के लिए रुकना नहीं चाहिए। छात्र जब वाचन समाप्त कर चुके होते हैं तब अशुद्ध उच्चारण को अध्यापक के द्वारा शुद्ध कराना चाहिए|

समवेत पठन – समवेत वाचन जिसे सामूहिक वाचन कह सकते हैं। समवेत वाचन प्रारंभिक कक्षाओं में अत्यधिक उपयुक्त व महत्वपूर्ण रहता है। जब कक्षा के सभी छात्र या बच्चे एक साथ वाचन करते हैं तब उसे समवेत वाचन या सामूहिक वचन कहते हैं। अर्थात सर्वप्रथम अध्यापक

एक पंक्ति को पढ़ता है उसके पश्चात कक्षा के सभी छात्र मिलकर उसका अनुकरण वाचन करते ह। इस प्रकार एक एक पंक्ति पूरी कविता या श्लोक का अनुकरण वाचन कराया जाता है।

मौन पठन – मौन पठन का अर्थ है बिना होंठ हिलाए चुपचाप पढ़ना या चुपचाप पढ़ते हुए अधिक अर्थ ग्रहण करना।

- मौन वाचन कैसे कराना चाहिए–

☐ मौन वाचन के समय मस्तिष्क और नेत्रों द्वारा ही वाचन की क्रिया करनी चाहिए इसमें किसी भी प्रकार से होंठों से ध्वनि नहीं निकलनी चाहिए|

☐ मौन वाचन करने के लिए छात्रों को शांतिमय वातावरण उपलब्ध कराना|

☐ मौन वाचन के समय छात्रों की मुद्रा पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है।

☐ मौन वाचन करते समय विराम चिह्न, गति और प्रवाह का अपने मन में अवश्य ध्यान रखें और इस बात से अवगत कराने की जिम्मेदारी शिक्षक की होती है कि वह छात्रों को इसका प्रयोग करने के लिए पहले से ही अभ्यस्त करें।

☐ मौन वाचन के उपरांत छात्रों से शिक्षकों को कुछ प्रश्न अवश्य ही करनी चाहिए जिससे यह ज्ञात हो जाए कि छात्र ने विषय वस्तु को किस सीमा तक समझा है।

मौन पठन के प्रकार – पठन की प्रकृति के अनुसार मौन पठन के दो भेद किए जा सकते हैं–

(i) गंभीर अथवा गहन पठन

(ii) द्रुत पठन

(i) गंभीर पठन – गंभीर पठन का तात्पर्य है गहनता से पढ़ना। शिक्षा शब्दकोश में गहन पठन के विषय में लिखा है कि '' गंभीर पाठन अभिव्यक्ति की प्रक्रिया, अर्थ, व्याकरण का विशद विवरण आदि के लिए ध्यान युक्त सचेत पठन है।'' जो विषय वस्तु सारगर्भित तथा क्लिष्ट होती है जिसमें चिंतन की अधिक आवश्यकता होती है उसका गंभीर पठन किया जाता है।

गंभीर पठन के उद्देश्य –

- भाषा पर अधिकार करना |
- विषय वस्तु पर अधिकार प्राप्त करना |
- नवीन सूचना एकत्रित करना |

(ii) द्रुत पठन – द्रुत पठन से तात्पर्य है शीघ्रता से किया जाने वाला पठन इसके अंतर्गत जिस विषय वस्तु का पठन किया जाता है वह सरल व बोधगम्य होती है। शिक्षा शब्दकोश में द्रुत पठन को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – '' द्रुत पठन अभिव्यक्ति की प्रक्रिया अथवा विशद विवरण की अपेक्षा मुख्य विचार के लिए द्रुत पठन है।'' इसमें मुख्य रूप से विषय वस्तु के सार ग्रहण पर बल दिया जाता है।

द्रुत पठन के उद्देश्य –

- सीखी हुई भाषा का अभ्यास करना |
- साहित्य का परिचय प्राप्त करना |
- अवकाश का सदुपयोग करना |
- सूचना एकत्र करना |
- आनंद प्राप्त करना|

- पठन शिक्षण की विधियां –

भाषा शिक्षण के कौशलों में एक महत्वपूर्ण कौशल ' पठन' कौशल में छात्रों को पूर्ण रूप से कुशल बनाने के लिए निरंतर अभ्यास करना एक अनिवार्य आवश्यकता है। पठन शिक्षण का अभ्यास सम्यक निर्देशन व प्रशिक्षण के साथ करने से छात्र शीघ्र व सरल रूप से इस में सफल हो जाते हैं। विभिन्न प्रकार के अनुसंधानों के आधार पर शिक्षा जगत में पठन शिक्षण की कई

विधियां बताई गई हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण विधियों का वर्णन निम्नलिखित है –

❖ वर्ण उच्चारण विधि – इस विधि को अक्षर बोध विधि भी कहते हैं।

चित्र विधि – इस विधि को ' देखो और कहो' के नाम से भी जाना जाता है। इस विधि में छात्रों के समक्ष कुछ चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं जिसमें चित्र के साथ शब्द भी लिखे होते हैं। छात्र पहले उस चित्र को भली प्रकार से देखता है समझता है तत्पश्चात बोलता है। इस विधि के लिए यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि जो चित्र छात्र के सामने प्रस्तुत किए गए हैं वह उसके ज्ञान क्षेत्र के अंतर्गत ही हो। शिक्षक किसी पोस्टर पर चित्र बनाकर या श्यामपट्ट पर चित्र बनाकर छात्रों के समक्ष उस चित्र को दिखाता है तथा उसके सामने लिखें शब्द को पढ़ने का अभ्यास कराता है। यह विधि अत्यंत रुचि पूर्ण व आकर्षक है। इस विधि में चित्र व शब्द एक साथ छात्रों के संज्ञान में अंकित हो जाते हैं। तथा छात्र अन्य शब्द भी बताने लग जाता है। यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है। यह प्रारंभिक स्तर के लिए अत्यंत उपयोगी विधि है। परंतु इस विधि द्वारा अमूर्त ज्ञान को स्पष्ट नहीं किया जा सकता|

अनुकरण विधि – जब शिक्षक शब्द रूपों को याद करवाते हुए प्रथमा विभक्ति के तीनों वचनों में छात्रों को पुनः बोलने का आदेश देता है तो इसे अनुकरण विधि कहा जा सकता है क्योंकि इसके अंतर्गत शिक्षक पहले बोलता है तथा छात्र उसका अनुकरण करते हैं। अतः इस विधि का प्रयोग करते समय शिक्षक को इस बात का आवश्यक रूप से ध्यान रखना चाहिए कि वह जो शब्द बोल रहा है उसका उच्चारण शुद्ध हो तथा सभी छात्र अनिवार्य रूप से उसका अनुकरण कर रहे हो। संस्कृत में शब्द रूप, धातु रूप, प्रकृति प्रत्यय, संधि, समास आदि का ज्ञान कराने के लिए यह उत्तम विधि है। यह प्रारंभिक स्तर के छात्रों के व्याकरण शिक्षण के लिए अत्यंत उपयुक्त विधि है।

ध्वनि साम्य – इस विधि के अंतर्गत एक समान रूप से उच्चारित होने वाले शब्दों को एक साथ सिखाया जाता है, जैसे रामः, कृष्णः, मानवः, जनः, लता, पिता, रमा, कमला, विमला आदि। समान ध्वनि के आधार पर और भी जो नवीन शब्द होते हैं उनका ज्ञान छात्रों को आसानी से हो जाता है।

सामूहिक पठन विधि – इसके अंतर्गत छात्रों को सामूहिक रूप से एक स्वर में पठन करने का अभ्यास करवाया जाता है जैसे – संस्कृत में गीत, प्रार्थना, श्लोक आदि का वाचन करवाया जा

सकता है। इसके अंतर्गत छात्र भाव के अनुकूल, लय, गति, आरोह, अवरोह वाचन करने में व्यस्त हो जाते हैं, किंतु इस सभी प्रकार के विषय वस्तु में संभव नहीं है। इस प्रकार के वाचन के अधिक प्रयोग से आसपास उपस्थित अन्य कक्षाओं में शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। प्रारंभिक स्तर पर कक्षाओं से दूर जैसे एक खेल के मैदान आदि में ले जाकर इस विधि के माध्यम से श्लोक, गीत आदि का अभ्यास करवाया जा सकता है।

भाषायंत्र विधि – यह वाचन की आधुनिक विधि है। इसका प्रयोग भाषा प्रयोगशाला में किया जाता है तथा इसे अनुकरण विधि की तरह ही प्रयोग किया जाता है। भाषा यंत्र विधि एवं अनुकरण विधि में अंतर मात्र इतना है कि अनुकरण विधि में शिक्षक द्वारा उच्चारित शब्दों व पंक्तियों को छात्र अनुकरण करते हैं जबकि भाषा यंत्र विधि में ध्वनि अभिलेख यंत्र (टेप रिकॉर्डर) में अभिलेख विषय वस्तु को छात्रों को सुनाया जाता है और छात्र उसका अनुकरण करते हैं। अतः छात्र अपनी त्रुटियों को दूर कर शुद्ध उच्चारण करने का अभ्यास करते हैं। यह विधि रोचक है परंतु इसमें अत्यधिक व्यय होता है। यह सामूहिक रूप से वाचन एवं दोषपूर्ण वाचन के लिए उपचारात्मक शिक्षण करने में अत्यंत सहायक है।

वाक्य गठन विधि – जैसे की भाषा विधि एवं मनोवैज्ञानिकों के द्वारा सिद्ध किया गया है कि भाषा शिक्षण की मुक्त इकाई वर्ण नहीं अपितु वाक्य है क्योंकि बालक मातृभाषा में पूरे वाक्यों के माध्यम से अपने मनोभाव व्यक्त करने का प्रयास करते ह। अतः संस्कृत भाषा में भी छात्रों के समक्ष छोटे–छोटे वाक्य पहले प्रस्तुत किए जाएं फिर उसका कठिनाई स्तर बढ़ाया जाए जैसे –

रामः गच्छति|

बालकः धावति|

कहानी विधि – इस विधि को वाक्य शिक्षण विधि का दूसरा रूप कहा जा सकता है। अर्थात इस विधि में एक से अधिक यानी की अनेकों चित्रों के संयोग से कहानी छात्रों को सुनाई जाती है। चित्रों के नीचे बड़े व स्पष्ट अक्षरों में वाक्य लिख दिए जाते हैं। यह वाक्य कहानी से संबंधित होते हैं। कहानी विधि छोटे बालकों के लिए विशेष रूप से लाभदायक होती है। शिक्षक कक्षा में कोई भी कहानी कहता है, उसके पश्चात श्यामपट्ट पर कहानी को वाक्यों में लिख देता है उसके पश्चात व छात्रों से वाक्यों को अपने कहने के अनुसार दूहराता जाता है। कहानी के

भागों में छात्रों की रुचि होती है अतः लिखे हुए वाक्य या वाक्यों के समूह बालक के मस्तिष्क में चित्रित हो जाते हैं उन्हें याद कर लेता है।

- पठन को प्रभावित करने वाले कारक – पठन को प्रभावित करने वाले कई कारण हो सकते हैं जो अग्रलिखित हैं –

शारीरिक कारक – शारीरिक कारक के अंतर्गत देखने व सुनने से संबंधित दोष, दांत, ओष्ठ, जिह्वा, नासिका, मूर्धा आदि के उच्चारण स्थान में दोष होने के कारण पठन की प्रक्रिया प्रभावित होती है। यदि छात्र विषय वस्तु को अर्थात शब्द को ठीक से देख नहीं पाएंगे तो उस शब्द को पहचानने में आवश्यक रूप से भूल होगी। इसी के अनुरूप अगर किसी शब्द की ध्वनि को ठीक प्रकार से नहीं सुन पाने के कारण उसका शुद्ध उच्चारण करना भी अत्यंत कठिन हो जाएगा। उच्चारण स्थानों में दोष होने के कारण छात्र हकलाना और तुतलाना भी प्रारंभ कर देता है।

मानसिक कारक – मानसिक रूप से मंद बुद्धि के बालक की तर्क शक्ति, निरीक्षण शक्ति, अर्थ ग्रहण कुशलता, प्रत्यय निर्माण, शब्द भंडार आदि तीव्र बुद्धि छात्रों की तुलना में कम होती है अतः इससे मंदबुद्धि बालक की पठन क्षमता भी प्रभावित होती है।

संवेगात्मक कारक – भय, इर्ष्या, हीन भावना, उपेक्षा, रुचि का अभाव होना भी छात्र के पठन को प्रभावित करते है। अतः संवेगात्मक संतुलन भी शुद्ध पठन के लिए अत्यंत आवश्यक है।

व्यक्तिगत कारक – छात्र स्वयं रुचि ना ले, अभ्यास न करें, पढ़ने में अरुचि होना, कक्षा में लगातार अनुपस्थिति, पाठ्य पुस्तकों का अभाव हो तब भी छात्रों में पठन दोष पाए जाते हैं।

वातावरण – स्थानीय बोली, प्रांतीय प्रभाव, माता–पिता का उच्चारण भी छात्र के पठन को प्रभावित करते है।

पठान दोष निवारण के उपाय –

- लिपि का पूरा ज्ञान देना|
- पठन में रुचि उत्पन्न करना|
- उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना|

- शारीरिक दोषों का उपचार करने की सलाह देना|
- शंका का समाधान करना|
- पठन प्रतियोगिताओं के माध्यम से छात्रों को पुरस्कृत करना|
- छात्रों को मौखिक अभिव्यक्ति व लिखित अभिव्यक्ति का अवसर प्रदान करना|
- अध्यापक का स्वयं का पठन आदर्श होना|
- पठन सामग्री का क्रम कठिनता के अनुसार निर्धारित करना|
- मंदबुद्धि छात्रों को पठन का अतिरिक्त अभ्यास कराना। आवृत्ति पुनरावृति पर बल देना|

- लेखन कौशल

भाषा मौखिक एवं लिखित दो रूप होते हैं। मौखिक के अंतर्गत भाषा का ध्वन्यात्मक एवं मौखिक अभिव्यक्ति आती है। जब ध्वनी को प्रतीकों के रूप में व्यक्त किया जाता है तथा उसे लिपिबद्ध करके भाषा को स्थायित्व प्रदान करते हैं। तो भाषा का यह लिखित रूप कहलाता है। भाषा के लिखित रूप की शिक्षा प्रतीकों को पहचान कर उन्हें बनाने की प्रक्रिया अथवा लिपिबद्ध करना लेखन कहलाता है।

- लेखन कौशल के उद्देश्य–

(i) छात्रों को लेखन कौशल का पूर्ण परिचय देना जिससे कि वे अपने भावों, विचारों एवं अनुभवों को मूर्त रूप प्रदान कर सके तथा भावों को लिपिबद्ध कर सकें।

(ii) छात्रों को स्पष्ट, सुंदर, सुडौल लेखन की शिक्षा प्रदान करना|

(iii) छात्रों के शब्दकोश को सक्रिय रूप देना|

(iv) अक्षरों का वास्तविक स्वरूप चित्रित करने की क्षमता का विकास करना|

(v) छात्रों से लिखने का अभ्यास कराना जिससे वे धाराप्रवाह रूप में लिख सकें।

(vi) विभिन्न विराम चिह्न का प्रयोग सीखना|

(vii) छात्रों को विचारों को लिखने का अभ्यास कराना|

लेखन कौशल का महत्त्व –

1. किसी भी भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने के लिए यह अत्यंत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है वाचन के साथ–साथ लेखन भी सिखाया जाए|

2. देश की सभ्यता संस्कृति का ज्ञान लेखन कौशल के माध्यम से ही संभव है क्योंकि प्राचीन ग्रंथ व शास्त्र लिखित रूप में विद्यमान हैं। ऐसा नहीं होता तो हम प्राचीन सभ्यता संस्कृति से वंचित रह जाते|

3. लेखन कौशल का ज्ञान ना होने पर समाज के विभिन्न सदस्यों से संपर्क स्थापित करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

4. विचार एवं चिंतन की प्रक्रिया में लेखन का ज्ञान विशेष रूप से मदद करता है। किसी विचार को लिखकर उस पर चिंतन सरलता से किया जा सकता है।

5. बौद्धिक विकास के लिए भी लेखन कौशल अत्यंत आवश्यक है। सम्यक बौधिक विकास के लिए अपने विचारों को लेखन शक्ति के माध्यम से अच्छी तरह अभिव्यक्त करना अत्यंत आवश्यक है।

7. छात्रों की उंगलियों एवं मांसपेशियों को दृढ बनाने में लेखन कौशल अत्यंत महत्वपूर्ण है।

8. वैश्विक स्तर पर विभिन्न देशों में संबंध लिखित भाषा के माध्यम से ही संभव हो पाता है।

लेखन शिक्षण प्रारंभ करने का उचित समय – विद्यालय में प्रवेश के साथ ही बालक को वर्णमाला लेखन कार्य प्रारंभ कराना संपूर्ण रूप से उचित नहीं है। वास्तव में बालकों से लिखना तभी प्रारंभ कराना चाहिए जब बालक मांसपेशियों पर नियंत्रण करना सीख चुका होता है। लिखने की प्रथम सोपान चित्र बनाना है।

बालकों में लेखन कौशल का विकास करने अथवा लिखने के लिए तैयार करने के लिए उनकी क्षमता एवं शक्तियों का विकास शिक्षक को करना चाहिए जैसे अवलोकन करने की क्षमता का

विकास, लेखन की और रुचि उत्पन्न करना, उंगलियों में लिखने की दृढ़ता उत्पन्न करना, मस्तिष्क एवं स्नायु में लेखन की दृढ़ता उत्पन्न करना लेखन का विकास करने के लिए नर्सरी कक्षा में ऐसे क्रीडा का प्रबंध करना चाहिए जिससे खेल–खेल में मांसपेशियां पुष्ट हो जाएं अक्सर देखने को मिलता है कि 3 वर्ष का बालक घर की दीवारों पर टेढ़ी–मेढ़ी रेखाएं खींचना प्रारंभ कर देता है। अगर उस समय उसे सही निर्देश प्रदान किया जाए और ऐसी वस्तुओं सामग्रियों को उपलब्ध करा दी जाए तो वह स्वयं की मूल प्रवृत्ति को भी संतुष्ट कर सकेंगे तथा लेखन की तैयारी को भी कर सकेंगे| लेखन प्रारंभ करने से पूर्व छात्रों के स्नायु को अनुशासन में रहने का अभ्यस्त बनाना अत्यंत आवश्यक है।

- लेखन शिक्षण की विधियां – लेखन शिक्षण की निम्नलिखित विधियां है –

रूपरेखानुकरण विधि – इस विधि में शिक्षक श्यामपट्ट, स्लेट पर चौक पेंसिल से बिंदु रखते हुए शब्द या वाक्य लिख देता है और छात्रों से उन निशानों पर पेंसिल या चौक दुहराने या फेरने के लिए कहता है, जिससे शब्द या वाक्य उभर जाए। इसके माध्यम से छात्र निरंतर अभ्यास करते करते वर्णों को लिखना सीख जाता है।

स्वतंत्र अनुकरण विधि – इसके अंतर्गत शिक्षक श्यामपट्ट कॉपी या स्लेट पर अक्षरों को लिख देता है और छात्रों से कहता है कि उन अक्षरों को देखकर उनके नीचे स्वयं उसी प्रकार अक्षर बनाएं। प्रारंभ में बच्चे इसी विधि से लिखना सीखते है।

मोंटेसरी विधि – श्रीमती मोंटेसरी महोदया ने लिखना सिखाने में आंख, कान और हाथ तीनों के प्रयोग पर बल दिया है।

जेकॉटॉट विधि – इस विधि के अंतर्गत शिक्षक छात्रों द्वारा पढ़े हुए वाक्य को स्वयं लिखकर छात्रों को देता है। छात्र एक एक करके प्रत्येक शब्दों को लिखकर शिक्षक द्वारा लिखे हुए शब्दों से मिलकर स्वयं संशोधन करता है। इसके पश्चात् शिक्षक उन्हें बिना देखे हुए उसी वाक्य को लिखने के लिए निर्देश देता है और छात्र उस वाक्य को स्मरण करके लिखता है।

पेस्टॉलॉजी विधि सरल से कठिन की ओर इस विधि का प्रमुख आधार है। इस विधि में सर्वप्रथम अक्षर का ज्ञान कराया जाता है तत्पश्चत अक्षरों को आकृति की टुकड़ों में विभाजित करके

टुकड़ों के संयोग से उस अक्षर की रचना की जाती है। सर्वप्रथम सरल वर्णों को सिखाया जाता है।

लेखन के दोष लेखन के दोषों का ज्ञान होने के पश्चात् हि इसका सुधार किया जा सकता है अतः शिक्षक को इन दोषों का ज्ञान आवश्यक रूप से होना चाहिए –

1. छात्र सीधी पंक्ति में नही लिख पाते अक्षर भी समान आकार के नही होते हैं।

2. अक्षरों की ऊंचाई एक समान न होकर उपर निचे होती है।

3. यदि अक्षरों का शुद्ध–शुद्ध ज्ञान न हो तो छात्र कुछ भी लिख देता है।

4. अक्षरों को पूर्णरूप में नही लिख पाते हैं।

5. सिरोरेखा जगह–जगह से टुटी होती है।

6. एक हि प्रकार की लेखनी से नही लिखने के कारण कुछ अक्षर पतले एवं मोटे हो जाते हैं।

7. शब्दों को पूरा न लिखना|

8. अक्षरों की स्याही का फीका होना|

शीघ्र व सुंदर लेखन के उपाय –

(1) बैठने का आसन छात्र किस प्रकार बैठते हैं अर्थात उनके बैठने के आसन पर शिक्षकों को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। ठीक प्रकार से लेखन के लिए यह आवश्यक है की छात्र ठीक प्रकार से बैठे हों। लेखन भी एक प्रकार की कला है और अक्सर देखा जाता है की छात्र सर झुकाकर लिखते हैं, यह दोषपूर्ण ढंग है। लेखन से पूर्व छात्रों का शारीर अत्यंत संतुलित होना चाहिए। आँखें एक फुट की दुरी पर हो तथा रीढ़ की हड्डी लिखते समय सीधी रहनी चाहिए|

(2) लेखन सामग्री – सुंदर लेखन के लिए सम्यक लेखन सामग्री का होना अत्यंत आवश्यक है।

(3) कलम पकड़ने का अभ्यास – कलम पकड़ने पर भी ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। शिक्षक को छात्रों पर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। कलम पहली और दूसरी ऊँगली के बीच में रखकर अंगूठे में पकड़ना चाहिए तथा नींव से लगभग एक इंच उपर कलम को पकड़ना चाहिए|

(4) लेखन की शैली – छात्रों की लिखावट पर भी शिक्षक को आवश्यक रूप से ध्यान देना चाहिए| कक्षा में अत्यधिक छात्र तिरछी लिखावट लिखते हैं. अतः शिक्षक को चाहिए की यथासंभव तिरछी लिखावट को निरुत्साहित करना चाहिए। सीधी लिखावट से मांसपेशियों पर बुरा प्रभाव नही पड़ता है और इस शैली में लिखने से थकान भी नही होती है तथा अक्षर भी सुंदर व सुडौल बनते हैं।

(5) अक्षरों की स्पष्टता शिक्षक को छात्रों के अक्षरों की स्पष्टता की ओर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है। जब छात्र लिख रहे हो तब शिक्षक को चाहिए कि वह प्रत्येक बालक के लेख को जाकर देखें कि उनका अक्षर सुडौल वा स्पष्ट है या नहीं। अक्षर का प्रत्येक अंग सही अनुपात में जब होता है तब उस अक्षर को सुंदर व सुडौल कहते है। अक्षर अधिक बड़े व अधिक छोटे नहीं होनी चाहिए। लिखते समय दो शब्दों के मध्य कम से कम एक अक्षर की दूरी अवश्य ही होनी चाहिए एवं दो पंक्तियों के मध्य में दूरी छोड़नी चाहिए|

(6) श्रुतलेख का प्रयोग–दृशिक्षकों को चाहिए कि छात्रों की लिखने की गति तीव्र हो और इसके लिए वह श्रुतलेख का प्रयोग कर सकते है। श्रुतलेख के अंतर्गत कक्षा में कोई भी छात्र या शिक्षक किसी भी पाठ्य विषय वस्तु को बोलता रहता है तथा छात्र उसको लिखते हुए अभ्यास करते रहते हैं। श्रुतलेख करते समय एक बात का ध्यान रखना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि श्रुतलेख पहले धीरे–धीरे बोलते हुए करना चाहिए और बाद में उसकी गति तीव्र होनी चाहिए| श्रुतलेख करते समय जो भी छात्र अशुद्धि करते हों उन्हें शुद्ध अवश्य ही कराया जाना चाहिए|

(7) अभ्यास लिखने की कला जैसे कि लिखने की सुंदरता उसकी स्पष्टता इत्यादि अभ्यास से ही आती है अतः शिक्षकों को चाहिए कि वह छात्रों से लिखने का पर्याप्त अभ्यास कराए|

(8) आदर्श प्रतिमान कक्षा में शिक्षक छात्रों के लिए एक आदर्श व्यक्तित्व के रूप में स्वयं को प्रस्तुत करता है अतः शिक्षक को हर कदम पर ऐसे कार्य व उदाहरण प्रस्तुत करने चाहिए जिससे छात्र उनको अपने आदर्श प्रतिमान के रूप में सदैव अपनाते हुए चले अतः अध्यापक को

भी स्वयं के अक्षर अथवा शब्द अत्यंत स्पष्ट व सुडौल लिखने चाहिए जिससे कि उसके आधार पर छात्र लिख सकें।

(9) लिपि प्रतीक हलंत, अनुस्वार,विसर्ग, मात्राओं के प्रयोग में सावधानी बरतना अत्यंत महत्वपूर्ण व आवश्यक होता है। अतः इनका प्रयोग करना अत्यंत आवश्यक होता है।

(10) पढना लिखने के साथ–साथ पढ़ना भी आना चाहिए नहीं तो लिखना निरर्थक हो जाता है।

(11) वचन कौशल (मौखिक अभिव्यक्ति)

व्यक्ति के जीवन में अनेक घटनाएँ घटित होती हैं जिससे वह विभिन्न प्रकार अनुभवों को प्राप्त करता है इन घटनाओं एवं अनुभवों का लाभ उठाकर जब अपने भावों विचारों को अपनी वाणी के माध्यम से मौखिक रूप में अभिव्यक्त करता है तो उसे मौखिक अभिव्यक्ति कहते है।। प्रो.रमन बिहारी के अनुसार '' व्यक्ति अपने हृदय के भावों को व्यक्त करते हुए जिस ध्वन्यात्मक संकेत साधन का प्रयोग करता है उसे उसकी मौखिक अभिव्यक्ति कहते हैं। यह ध्वनि संकेत समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं।''

मौखिक अभिव्यक्ति के उद्देश्य

- प्रत्येक मानव अपने दैनिक जीवन में प्रत्येक पल कुछ देखता है, कुछ सुनता है, उसे शुद्ध एवं तर्कपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास करना।

- छात्र समाज में एवं समाज के विभिन्न सदस्यों के साथ शिष्टता पूर्ण बात करने की योग्यता को विकसित कर सके।

- किसी भी छात्र के मन में किसी भी विचार के प्रति कोई संशय उत्पन्न हो तो वह अपने शंका के समाधान के लिए दूसरों के सामने अपने विचारों को भलीभांति प्रकट कर सके और बिना किसी संकोच के संदेह का निवारण कर सके।

- छात्रों में ऐसी क्षमता का विकास करना जिससे पूछे गए प्रश्नों का उत्तर शुद्ध तथा उचित पूर्ण ढंग से दे सके।

- छात्रों के शब्दकोश का विकास करना|
- छात्र अपनी रुचि के विषयों में स्वाभाविक रूप से बिना किसी प्रयास के वार्तालाप करने में समर्थ हो सके|
- धाराप्रवाह बोलने का अभ्यास कराना|
- उच्चारण शुद्ध कराना|
- छात्रों को व्यवहारिक ज्ञान की विशेष शिक्षा देना।
- छात्रों के अंदर विद्यमान संकोच को जड़ से मिटा देना|

मौखिक अभिव्यक्ति का महत्व

- हम अपने दैनिक जीवन में जितने भी व्यक्ति के संपर्क में आते हैं उनके साथ हम मौखिक भाषा में ही वार्तालाप करते हैं। ऐसे व्यक्ति जो वार्तालाप करने में सक्षम नहीं होते वह अपने भाव एवं विचारों को ठीक प्रकार से व्यक्त नहीं कर पाते हैं।
- प्रायः ऐसा देखा जाता है कि व्यवहारिक जीवन में सफल होने के लिए बातचीत अर्थात वार्तालाप करने में कुशलता होनी ही चाहिए|
- छात्रों के व्यक्तित्व का विकास करने में मौखिक भाषा अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। क्योंकि व्यक्ति अपने मधुर तथा प्रभावशाली शब्दों के द्वारा अन्य व्यक्तियों पर भी अपने व्यक्तित्व का प्रभाव डाल सकता है।
- लैम्बोर्न महोदय के अनुसार '' मेरा विचार है कि पाठशाला के जीवन में अंतिम वर्ष तक लिखित कार्य की अपेक्षा मौखिक कार्य परम आवश्यक है।''
- आत्म अभिव्यक्ति में दक्षता प्राप्त करने के लिए वार्तालाप अत्यंत महत्वपूर्ण व आवश्यक है।

- डासन महोदय के अनुसार– '' मौखिक कार्य भाषा की नींव तैयार कर देता है, क्योंकि मौखिक एवं लिखित भाषा के नियम समान होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मौखिक अभिव्यक्ति भाषा रूपी व्यक्ति की एक सुदृढ़ कला है।''

मौखिक अभिव्यक्ति में कुशल बनाने के उपाय

चित्र वर्णन – चित्रों के उपयोग से छोटे बालकों को अभिव्यक्ति की शिक्षा देना अत्यंत उपयोगी है। किसी प्राकृतिक अथवा घटनात्मक चित्रों को प्रस्तुत करके उससे संबंधित विभिन्न भागों पर उनसे प्रश्न पूछा जाए तथा अनेक प्रश्नों के उत्तर को आपस में मिलाकर एक कहानी रूप धारण किया जा सकता है।

संगीत द्वारा – प्रारंभिक स्तर के छात्रों को लोक गीत कविताएं रुचिपूर्ण लगती है। जबकि माध्यमिक स्तर पर छात्रों को साहसी वीरों तथा घटनाओं के वर्णन संबंधी गीत प्रिय लगते हैं। अतः शिक्षकों को चाहिए कि वह छात्रों को उनकी रूचि के अनुसार गीत सुनने सुनाने के लिए उत्साहित करें जिससे वह मौखिक अभिव्यक्ति करने में समर्थ हो सके।

कहानी कथा – चित्र दिखाकर उसके माध्यम से उनसे कोई भी कहानी कहने का अवसर दिया जाए। जैसे महापुरुषों के जन्म से संबंधित कहानियों को कहने का अवसर दिया जाना चाहिए एवं कहानी के मध्य में रिक्त स्थानों की पूर्ति करानी चाहिए।

वाद विवाद प्रतियोगिता – इसमें पक्ष–विपक्ष के सामने विचारों को व्यक्त करते हैं जिससे बालकों की मौखिक अभिव्यक्ति के साथ–साथ कल्पना ज्ञान वृद्धि तथा नेतृत्व की भावना का विकास होता है।

अन्त्याक्षी प्रतियोगिता – इसमें एक पक्ष के द्वारा समाप्त किये गये पद्यांश के अंतिम वर्ण से दूसरा पक्ष अपना पद शुरू करता है। इसमें बालक अधिक से अधिक श्लोक, सूक्तियां एवं बाल गीत कंठस्थ कर लेते हैं।

बालसभा – प्रत्येक विद्यालय की जिम्मेदारी होनी चाहिए कि महीने में कम से कम एक या दो बाल सभाएं की जाए जिसमें भाषण, कहानी कथन, श्लोक पाठ, कविता पाठ, नाटक, संवाद आदि प्रतियोगिताओं द्वारा मौखिक अभिव्यक्ति को विकसित किया जा सके।

प्रश्न उत्तर – यह विधि छात्रों को मौखिक शिक्षण प्रदान करने की अत्यंत उपयोगी विधि है। इसके अंतर्गत किसी भी विषय को पढ़ाते समय बीच–बीच में की जाए तथा छात्रों से पूर्ण एवं शुद्ध उत्तर स्वीकार किए जाएं। अगर कोई छात्र अशुद्ध उत्तर देता है तो उन अशुद्ध और अपूर्ण उत्तरों को किसी अन्य छात्रों से ही शुद्ध कराया जाए।

सांस्कृतिक कार्यक्रम – राष्ट्रीय पर्वों, उत्सव एवं जयंती समारोह पर विभिन्न कार्यक्रम जैसे भाषण, कविता, पाठ, नाटक, वाद विवाद, संवाद अंताक्षरी आदि आयोजित किए जाएं जिनमें बालकों को मौखिक अभिव्यक्ति के लिए अवसर मिल सके।

अभिनय – अभिनय के माध्यम से छात्रों को बोलने का अवसर मिलता है जिससे उनके अंदर संकोच एवं झिझक समाप्त हो जाती है और उच्चारण भी शुद्ध होता है। इससे छात्र के आत्म प्रकाशन, कल्पना एवं तर्कशक्ति में वृद्धि होती है।

संवाद – छात्रों द्वारा पढ़े गए कहानी व देखे गए दृश्यों के बारे में ऐसे विचार–विमर्श करने को प्रोत्साहित किया जाए|

वर्णन – छात्रों द्वारा देखे गए दृश्यों, घटनाओं, स्थानों, उत्सव एवं परिवार की घटनाओं का वर्णन एवं यात्राओं का वर्णन कक्षा में अन्य छात्रों के सामने प्रस्तुत करने का अवसर अवश्य ही दिया जाना चाहिए|

विचार गोष्ठी या सामूहिक विचार विमर्श – छात्र किसी भी समस्या या किसी भी विषय पर अपने विचारों को विचार गोष्ठी में व्यक्त करता है जिससे छात्रों को बोलने के अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। इस प्रकार का आयोजन उच्च कक्षाओं में ही संभव हो पाता है।

कवि सम्मेलन – इसमें छोटी छोटी कविताएं और सुनने सुनाने के लिए छात्रों को प्रोत्साहित किया जाएद्य कवि दरबार में कवियों की रचनाओं का पाठ उनकी उस समय की वेशभूषा के अनुरूप वैसे ही वेशभूषा धारण करके किया जाता है अतः कवि दरबार के माध्यम से कविता पाठ एवं अभिनय का सुंदर समन्वय होता है।

# इकाई–3

## संस्कृत साहित्य में पद्य–शिक्षण

“सहितस्य भावः साहित्यम्” अर्थात् जिसमें सहित (स+ हित ) का भाव हो उसको साहित्य कहते है। इसी व्युत्पति से दो अर्थो का बोध होता है शब्द और अर्थ का सहभाव तथा दूसरा हित का यानि साथ होना। इन परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि संस्कृत काव्य परम्परा में दो धाराएँ प्रवाहित हुई एक धारा विशिष्ट अर्थ पर बल देने वाली थी तो दूसरी विशिष्ट शब्द पर इन दोनों धाराओं के अतिरिक्त एक वर्ग और भी था जो केवल विशिष्टार्थ पर बल देता था।

साहित्य शब्द अंग्रेजी के Literature शब्द का पर्याय है जिसकी उत्पत्ति लैटिन शब्द Letter से हुयी है। Letter का हिन्दी पर्याय वर्ण होता है। साहित्य समाज का प्रतिविम्ब होता है जिस प्रकार का समाज होगा उसी प्रकार साहित्य की रचना होती है। समाज में जिस प्रकार उत्थान–पतन वृद्धि–ह्रास, रूप–रंग, समृद्धि–दुखावस्था इत्यादि तत्कालीन समाज में व्याप्त रहती है उसका ज्ञान भी समकालीन साहित्य से ही ज्ञात होता है इस प्रकार कहा जा सकता है कि साहित्य ही किसी भी संस्कृति का वाहक होता है। संस्कृति का मूल आधार यदि भौतिकता पर आश्रित है तो वहां का साहित्य कभी भी आध्यात्मिक नहीं हो सकता और यदि उस संस्कृति के मूल में आध्यात्मिकता की भावना व्याप्त हो तो उस देश तथा जाति का साहित्य भी आध्यात्मिकता से आच्छादित हुए विना नहीं रह सकता है। साहित्य सामाजिक भावना तथा सामाजिक विचारों को अभिव्यक्त करने के कारण यदि सामाज का मुकुट कहा जाता है तो सांस्कृतिक विचारों को भावनाओं का जनता के हृदय तक पहुँचाने के कारण साहित्य संस्कृति का प्रसारक एवं प्रचारक भी होता है।

संस्कृत साहित्य का इतिहास इस सिद्धान्त को निर्विवाद रूप से स्वीकार करता है कि संस्कृत साहित्य भारतीय समाज भारतीय परम्परा एवं निर्मल विचारों का रूचिर दर्पण है। भारतीय समाज में सांसारिक विषयो के उपभोग रूपी संसाधनों का सौलय होने के फलस्वरूप भारतीय समाज जीवन के विविध प्रकार के संघर्षों से अपने आप को अलग रखकर उस भौतिक एवं अशाश्वत आनन्द की अनुभूति को ही शाश्वत एवं वास्तविक लक्ष्य मान बैठी है। इसके विपरित संस्कृत साहित्य मानव जीवन की विषम परिस्थितियों में भी आनन्द की खोज में सदा मग्न रहता है। आनन्द सच्चिदानन्द भगवान का वह स्वरूप है जिसका वर्णन मानव के द्वारा

अकल्पनीय है इसलिए संस्कृत–महाकाव्यों की आत्मा 'रस' को माना जाता है। रस के द्वारा ही पाठकों एवं श्रोताओं के अन्तर्मन में आनन्द की अनुभूति हो यही काव्य का अन्तिम लक्ष्य है। संस्कृत के महाकाव्यों में रीति गुण, अलंकार आदि काव्यों का विस्तृत विवेचन होने पर भी रसानुभूति ही प्रमुखतया प्रतिपाद्य विषय है।

संस्कृत भाषा परिनिष्ठ दोषरहित, सरल, गम्भीर, यथार्थ, तथा वैज्ञानिक है। आधुनिक भारत में संस्कृत का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है। महत्व के आभाव में किसी भी भाषा शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। संस्कृत भाषा हिमालय पर्वत से लेकर विन्ध्याचल पर्वत तक विचार विनियम की भाषा थी। आज के युग में संस्कृत शिक्षण का महत्व एवं उपयोगिता क्या होनी चाहिए इस पर संक्षिप्त विवेचना अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जिसके अन्तर्गत निम्नलिखित बिन्दु अनिवार्य हैं।

1. **वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का विकासः** संस्कृत साहित्य में छात्रों एंव पाठको के नैतिक विकास हेतु बहुत से श्लोक है जिसके द्वारा उनमें इस प्रकार की भावनाओं का विकास किया जा सकता है। वैदिक काल से लेकर आधुनिक संस्कृत काल तक वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना सर्वत्र व्याप्त थी। संस्कृत भाषा के अतिरिक्त विश्व की कोई अन्य भाषा में इतनी व्यापकता नहीं है जो लोगो में इसी प्रकार की भावना जागृत कर सकें। संस्कृत साहित्य का हृदय इतना वृहद् है कि उसने विश्व के समस्त प्राणियों को अपना कुटुम्ब यानि (परिवार) की संज्ञा दी । उसने विश्वबन्धुत्व की भावना को जागृत किया। संस्कृत के श्लोकों द्वारा समाज में जितने प्राणवत्त जीव व्याप्त है उनमें आत्मवत् का भाव देखता है। सभी सुखी हो सभी निरोग रहे किसी को किसी प्रकार का दुःख प्राप्त न हो इस प्रकार की भावना केवल संसकृत साहित्य में हि दृष्टिगोचर हो सकती है अन्यत्र नहीं। जैसा कहा भी गया है।

   "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

   सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुख भागभवेद।। तैत्तिरीय उपनिषद्

2. **भारतीय भाषा के संरक्षण** हेतु संस्कृत का अध्यापन एवं अध्ययन सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। क्योंकि किसी भी भाषा के वृद्धि एवं विकास के लिए संस्कृत का ज्ञान आवश्यक है। यदि किसी भी प्रदेशिक भाषा के पदों की चर्चा करे तो 80–90 प्रतिशत शब्द संस्कृत निष्ठ ही होते है। इसलिए सभी भारतीय प्रादेशिक आर्य भाषा संस्कृत से ही समभुत्पन्न हुए हैं ये निश्चित रूप से हम कह सकते है। मानवपरिवार की तरह भाषा परिवार में भी शब्दावली पदरचना सम्बन्धि सादृश्य देखने को मिलता है। भारतीय संविधान के आठवीं अनुसूची में संस्कृत, हिन्दी, मैथली असमिया, बंगला, बोड़ो, डोगरी, गुजराती, कश्मीरी, कोंकणी, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उड़िया, पंजाबी, संथाली, सिन्धी, उर्दू कन्नड़, तेलगु,

तमिल, ओडिया ये बाईस भाषाऐं भारोपीय परिवार के अन्तर्गत आती है। संस्कृत सभी इण्डो युरोपियन भाषाओं की जननी कही जाती है।

3. **संस्कृत का शैक्षिक–विकास** – संस्कृत साहित्य व्यापक साहित्य है। संस्कृत में नये पदो का अर्थ ज्ञान, संस्कृत शब्दों के पर्याय शब्दो का ज्ञान, कृर्तवाच्य कर्मवाच्य के प्रयोग में परिवर्तन का ज्ञान शब्दों की व्युत्पति का ज्ञान, सहित्य ग्रन्थो का विस्तृत अध्ययन कविता की रचना में दक्षता, निबन्ध रचना, रस भेद एवं शैली भेद का ज्ञान सम्पादन करना। सन्धि–युक्त पदो का योजन एवं विभाजन, विग्रह एव समास का ज्ञान, प्रकृति एवं प्रत्यय में अन्तर ज्ञात करना। कृत–तद्धित प्रत्यय युक्त शब्दो का ज्ञान, नाम, सर्वनाम अव्यय उपसर्ग वचन लिंग विभक्तियों का ज्ञान। अच् झल् प्रत्याहारों के स्वरूप का ज्ञान, आत्मनेपद–परस्मैपद – उभयपद इत्यादि धातुओं का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है। ये सभी विषय वस्तु संस्कृत भाषा को आधार मानकार ज्ञात कर लेना चाहिए। कहा भी गया है–

"काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।

व्यसनेन च मूर्खाणा निद्रया कलहेन वा।। (हितोपदेश)

संस्कृत साहित्य में गद्य–पद्य चम्पू–नाटक इत्यादि विविध साहित्य व्यापक रूप से उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त साहित्य–ज्योतिष–गणित दर्शन–नीतिशास्त्र–इतिहास आदि ग्रन्थों में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। संस्कृत साहित्य में पंच महाकाव्य अति महत्वपूर्ण एवं लोक प्रसिद्ध है–(1) रघुवंशम् (2) कुमारसम्भवः(3) मेघदूतम्(4) किरातार्जुनीयम्(5) शिशुपालवधम्।

गद्य काव्य में– कादम्बरी, हर्षचरितम्, वासवदत्ता इत्यादि।

नाटकों में – अभिज्ञानशाकुन्तलम्, उत्तररामचतिम् एवं मृच्छकटिकम्।

4. "**चरित्र निर्माण में संस्कृत साहित्य**" का विशेष योगदान रहा है। चरित्र हीनता मानव जीवन को क्लिष्टता की ओर धकेलती जाती है।चरित्रवान व्यक्ति समाज सेवक, आचरणवान एवं आदर का पात्र होता है। इसलिए चरित्र का निर्माण परम आवश्यक है। चरित्र निर्माण के लिए संस्कृत का अध्ययन आवश्यक है। जिस प्रकर शिक्षा के द्वारा जन्मजात शक्तियों का विकास होता है मनुष्य का सर्वांगीण विकास सामाजिक भावना का विकास होता है उसी प्रकार सर्म्पूण व्याक्तित्व के विकास के लिए उतकृष्ट चरित्र निर्माण का विकास होना परम आवश्यक है। चारित्रिक वल के संवर्धन के लिए संस्कृत के अध्ययन पर विशेष बल दिया गया है। कहा भी गया है।

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येसु लोष्टवत्।

आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति स पण्डितः।। हितोपदेश

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।

स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिन्यां सर्वमानवाः।। मनुस्मृति

5. **आत्मानुशासन के लिए संस्कृत का महत्व**–मानव जीवन निरोद्दश्य नहीं होता क्योकि मानव हमेशा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निरन्तर प्रयासरत रहता है और अन्ततोगत्वा अपने परिश्रम से उसे प्राप्त कर लेता है। इस लक्ष्य प्राप्ति के पीछे मनुष्य का अपना दृढ़ संकल्प उत्साह लगन एवं आत्मानुशासन होता है। इसी प्रकार यदि शिक्षक भी अपने छात्रों में अनुशासन चाहता है तो उसे संस्कृत का अध्ययन करवाना चाहिए। यदि छात्रों को अधिक स्वतन्त्रता प्रदा किया जाता है तो वे अध्यापक के शिर पर बैठकर अनुशासनहीन हो जाते हैं। और यदि कक्ष में सैनिको की भाँति दण्डात्मक अनुशासन की स्थापना करते हैं तो छात्र डरपोक एवं संशय ग्रस्त हो जाएँगे। इसलिए छात्रों में आत्मानुशासन की स्थापना करनी चाहिए। इसके लिए शिक्षक में शिक्षण सामर्थ्य , असाधारण प्रतिभा, उत्तमव्यक्तित्व, आदर्शचरित्र इत्यादि गुणों का होना आवश्यक है इन गुणों से प्रेरित हो कर छात्र स्वयं अपने आप को अनुशासित कर लेगा।
अँग्रेजी भाषा में Discipline शब्द की उत्पति Disciple शब्द से हुयी है। जिसका अर्थ है छात्र शिक्षक का अनुगामी होता है। यदि "व्यवस्था" साधन है तो अनुशासन "साध्य है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार शासन का अनुकरण ही अनुशासन है। अच्छी शिक्षण विधि ही छात्रों में आत्मविश्वास को बढ़ाती है। आत्मविश्वास के द्वारा आत्मानुशासन सुदृढ़ होता है। इसलिए आधुनिक भारत में आत्मानुशासन के संवर्धन के लिए संस्कृत का अध्ययन एवं अध्यापन आवश्यक है।

वैज्ञानिक भाषा के रूप में संस्कृत का अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। संस्कृत साहित्य में भौतिक विज्ञान के प्रवर्तक ऋषिवर कणाद मुनि का माना जाता है। रसायन शास्त्र का वर्णन भी संस्कृत साहित्य में उपलब्ध है। "रस रत्नाकर" ग्रन्थ में नागार्जुन ने "गंध शोधन" विधि का वर्णन किया है। आयुर्वेद शास्त्र में विभिन्न प्रकार की औषधियों के प्रयोग का वर्णन है कौटिल्य का अर्थशास्त्र राजनीति के सिद्धांतो का प्रमुख ग्रन्थ है। संस्कृत साहित्य में विविध प्रकार के यंत्रों के प्रयोगों की चर्चा मिलती है राम क पुष्पक विमान की चर्चा रामयण में प्राप्त होती है। अमेरिका में स्थित नाशा (NASA) में कार्यरत वैज्ञानिक **रिक ब्रिग्स** ने संस्कृत के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा था की संस्कृत भाषा विश्व की अन्य भाषाओं की अपेक्षा कम्प्युटर विधि के लिए सर्वाधिक उपयुक्त और अनुकूल है। इससे यह ज्ञात होता है कि संस्कृत भाषा कितनी वैज्ञानिक एवं महत्वपूर्ण हैं जिसके अध्ययन अध्यापन हेतु वर्तमान शिक्षा–शास्त्रियों को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। हम पाठ के माध्यम से संस्कृत शिक्षण के विविध विधाओ का वर्णन करेंगे परन्तु मूल रूप से पद्य शिक्षण की चर्चा पर प्रकाश डाला जा रहा है। साहित्य में जिस प्रकार काव्य सर्वोत्तम विद्या मानी जाती है उसी प्रकार काव्य शिक्षण भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। सभी अध्यापक सफलता पूर्वक काव्य शिक्षण (पद्य

शिक्षण) नहीं कर सकते। पद्य साहित्य शास्त्र की प्रथम अभिवयक्ति मानी जाती है, इसके कई कारण भी हो सकते हैं जैसे तत्कालीन समाज के पास लेखन–साधन नहीं होंगे। अतः मनुष्यों ने अपनी अभिव्यक्ति को स्थायित्व प्रदान करने के लिए पद्य का आश्रय लिया होगा, चुंकि पद्य में शब्दों का चयन, उनका क्रम, और शब्दों की संख्या विभिन्न छन्दों के अनुसार निश्चित होती है।

पद्य के माध्यम से जब प्रत्यक्ष विचारों की अभिव्यक्ति होती है तो उसे हम सामान्य भाषा में पद्य की संज्ञा देते हैं। परन्तु जब पद्य द्वारा ह्रदय के कोमल एवं अप्रत्यक्ष भावों को अभिव्यक्त करते है तब उसे काव्य कहा जाता है। सर्वप्रथम विश्व में संस्कृत पद्य ही लिपि बद्ध किए गए। वेदों को विश्व के समक्ष लिपिबद्ध करके सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया। वेदों एवं पुराणों में अनेक ऐसी कथाएँ एवं घटनाएँ हैं जिन्हें पद्य के द्वारा व्यक्त किया गया हैं काव्य ह्रदय का विषय है, अतः आज जहाँ समाज में नैतिक ह्रास पतन की ओर अग्रसर है, वहाँ ह्रदय गत भावों की शिक्षा एवं नैतिक उत्थान के लिए संस्कृत पद्य का शिक्षण अत्यंत आवश्यक एवं अनिवार्य प्रतीत होता है।

पद्य शिक्षण के निम्नलिखित उद्देश्य हैः–

1. छात्रों में पद्य को गति, यति, लय, एवं भावपूर्ण ढंग से पढ़ने की योग्यता विकसित करना।

2. पद्य के प्रमुख भावों को समझने की समझ विकसित करना ।

3. छात्रों में कल्पना शक्ति का विकास करना।

4. छात्रों की कोमल एवं अपरिपक्व भावनाओं को परिष्कृत करते हुए उदात्त भावों को ग्रहण करने एवं सृजित करने की योग्यता का विकास करना।

5. पद्यगत सौन्दर्य की रसानुभूति की क्षमता विकसित करना।

6. छात्रों को शब्दार्थ, लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ भावों को ग्रहण कर पद्य के मूल तत्व को समझने की यौग्यता विकसित करना।

7. पद्य गत सौन्दर्य की अनुभूति की क्षमता उत्पन्न करना।

8. काव्य में समाहित लक्ष्यार्थो तथा व्यंग्यार्थो के आधार पर दृश्यचित्रों को उद्‌भावित करने की योग्यता का विकास करना।

9. पद्य में समाहित संदेश को ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।

10. पद्य की विभिन्न विधाओं एवं शैलियों से परिचित करवाना।

11. छात्रों में संस्कृत कविता के प्रति रूचि का विकास करना।

12. छात्रों को पद्य शिक्षण एवं काव्य–स्वरचना के लिए अभिप्रेरित करना।

13. छात्रों को मानव समाज के विविध पक्षों तथा उनकी स्वयं की संस्कृति एवं सभ्यता से अवगत कराना।

**<u>पद्य शिक्षण की विभिन्न विधियाँ</u>**

1. दण्डान्वय विधि

2. खण्डान्वय विधि/अन्य नाम– प्रश्नोत्तर विधि

3. गति एवं नाट्य विधि

4. व्याख्यान विधि

5. तुलना–विधि

6 अभिनय विधि

7. समीक्षा विधि

**<u>1. दण्डान्वय विधि</u>**– संस्कृत पद्य में पदों का क्रम निश्चित नहीं होता। हम किसी अन्य या हिन्दी भाषा में पदों को एक निश्चित क्रम में रखते हैं। जिसमें सर्वप्रथम कर्ता, कर्म तदनन्तर क्रिया इत्यादि को समायोजित करते हैं। पद्य के पदों (शब्दों) को इसी क्रम में लिखने की प्रक्रिया को अन्वय कहा जाता है। अन्वय शब्द की सन्धि करने पर हमारे समक्ष दो खण्ड आते हैं। अनु+अय अर्थात् गद्यक्रमम् अनु अयति अर्थात् गद्य के क्रम से पद्य के शब्दों को रखना ही अन्वय कहलाता है। अन्वय के दो भेद बताएँ गए है। "दण्डवत् खण्डवच्चैव द्विभेदोऽन्वय उच्चते"। दण्डान्वय की परिभाषा निम्नलिखित रूप से दी जा सकती है।

"आद्ये विशेषणं योज्यं विशेष्यं तदनन्तरम्।

क्वाणमुल्ल्यप्रभृत्येवं पूर्वं दण्डान्वये भवेत्।।

दण्डान्वय विधि से पद्य शिक्षण को पढ़ाते समय सर्वप्रथम कर्त्ता, कर्म तथा क्रिया को स्पष्ट रूप से चिन्हित् किया जाता है। पुनः कर्त्ता, के विशेषण, कर्म के विशेषण तथा क्रिया के विशेषण को रखा जाता है। उसके पश्चाद् क्त्वा, ण्मुल तथा ल्यप् आदि प्रत्ययों को यथास्थान रखकर पद्य के शब्दों को उपरोक्त क्रम से रख दिया जाता है जिस प्रकार हम गद्य में कर्ताकर्मक्रिया इत्यादि क्रम का प्रयोग करते हुए उस वाक्य को बोल सकते है। पद्य के सारे वाक्य को एक सीध में रख दिया जाता है जिससे की वह एक दण्ड के समान प्रतीत होने लगता है, अतः इस प्रकार के अन्वय को दण्डान्वय विधि कहते है–

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।

यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्।।

इस पद्य में कर्ता कर्म क्रिया इत्यादि का अन्वय एवं क्रमशः रखते हुए निम्नलिखित रूप से दण्डान्वय किया जा सकता है

यत्कृप मूकं वाचालं करोति, पङगुं गिरिं लङघयते तं परमानन्दमाधवम् अहं वन्दे।

**<u>दण्डान्वय विधि का गुण</u>**– पद्य मे पदों के इधर उधर होने के कारण छात्र उस पद्य का वाक्यार्थ समझ नहीं पाते, परन्तु दण्डान्वय विधि से पदो के क्रमबद्ध करने के उपरान्त छात्र उस पद्य को सरलता से समझ लेते है।

**<u>दण्डान्वय विधि का दोषत्य न्यूता</u>**– इस विधि के माध्यम से पढ़ाने के बाद अध्यापक को अन्य विधियों की आवश्यकता महसूस होती है, क्योकि दण्डान्वय विधि के बाद व्याख्यान विधि के प्रयोग के बिना अध्यापक वाक्यार्थ को स्पष्ट नहीं कर सकता।

**खण्डान्वय विधि–** पद्य के वाक्य को जब खण्ड–खण्ड करके क्रमबद्ध किया जाता है, उस प्रक्रिया को खण्डान्वय विधि कहा जाता है। खण्डान्वय विधि को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया जा सकता हे।

कर्तृक्रर्म क्रियास्तावच्छ्लोके योज्यास्ततः परम्।

कर्तृकर्म किमो रूपं पुरस्कृत्य तृतीयादीर्नियोजयेत्।। ल्यबन्तं च तुमन्तं च क्त्वान्तं कर्मविभूषितम्।

खण्डान्वये पुनः प्रश्नं पूर्वमन्ते प्रयोजयेत्।।

खण्डान्वय में वाक्य को खण्ड–खण्ड करके क्रमबद्ध किया जाता है। दण्डान्वय प्रणाली में प्रश्न व्याकरण आधारित होते है परन्तु इस पद्धति में प्रश्न साहित्य आधारित होते है। कर्ता से सम्बन्धित अंशों को श्लोक से निकलवाने के लिए कः किम्, केन, कस्मै, कस्यात् कस्य इत्यादि सर्वनाम शब्दो के माध्यम से प्रशन पूछा जाता है, विशषण के ज्ञान के लिए कीदृशम किं भूतम्, कथं भूतम् इत्यादि प्रश्नों को पूछा जाता है। क्रियाओं के ज्ञान के लिए किं करोति, किं कृत्वा इत्यादि प्रश्नों को पूछना चाहिए क्रिया विशेषण के ज्ञान के लिए कुतः, कुत्र, कदा, कथं, किमर्थम् इत्यादि से सम्बन्धित प्रश्नों को पूछना चाहिए। इस पद्धति में प्रश्नोत्तर का विशेष महत्व है। प्रश्नों के चयन तथा उनके समाधान के द्वारा श्लोक के भाव को निकाल सकते है। खण्डान्वय प्रणाली से श्लोक के सूक्ष्म से सूक्ष्मभाव तथा पद्य में निहित सौन्दर्य तथा रस की अनुभूति होती है।

जैसे– विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्।।

खण्डान्वय से सम्बन्धित प्रश्न–

1. विद्या किं ददाति ? (विद्या क्या देती है ?) विनय।
2. विनयाद् किं याति ? (विनय से क्या प्राप्त होता है ?) पात्रता।
3. धनं कस्मात् आप्नोति ? (धन किससे प्राप्त होता है ?) पात्रता से ।
4. धनात् कं याति ? (धन से क्या होता है ?) धर्म।
5. ततः परं किं आप्नोति ? (उसके बाद क्या होता है ?) सुख।

श्लोक शिक्षण की यह पद्धति मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुकूल है।

**गुण–**

1. इस पद्धति से सरल एवं प्रभावपूर्ण तरीके से पाठ को पढ़ाया जा सकता है।
2. छात्रों के सृजनात्मक शक्ति का विकास होता है।
3. इस पद्धति से छात्र श्लोक के अर्थ एवं भाव को सुगमता से समझ सकेंगें।
4. छात्र श्लोकान्तर्म सौन्दर्य की अनुभूति तथा रसानुभूति का अनुभव भावपूर्ण रूप से करते है।

**दोष–**

1. यह पद्धति प्राथमिकसतर के छात्रों के लिए उपयोगि नहीं है।
2. इसमें व्याकरण के अंशों का समावश नहीं है।
3. यह पद्धति शुरूआती दौर में कठिन लगती है।

गति एवं नाट्य विधि – यह विधि बाल कविताओं को पढ़ाने के लिए अत्यनत उपयोमि है। इस विधि में अध्यापक द्वारा बच्चों को पद्य को गाकार बोलने तथा पद्य के भाव के अनुसार अभिनय करना सिखया जाता है। इस पद्धति द्वारा बालकों को गति, यति एवं लयपूर्वक पद्य पढ़ने का तथा अंगसन्चालन का अभ्यास करवाया जाता है। अंगेजी माध्यम के विद्यालयों में प्राथमिक स्तर पर खेल विधि द्वारा अध्यापन करवाया जाता है। जिसमें बालगीत, अभिनयगीत, कहानीकथन की प्रक्रिया को अपनाया जाता है। संस्कृत शिक्षण में गीत नाट्य पद्धति के लिए मुकुन्दमाला, भजगोन्दिश्लोकाः भोजप्रबन्धश्लोकाः चाटुश्लोकाः प्रहेलिकाः सुभाषितानि इत्यादि अति प्रमुख साधन हो सकता है। जैसे–

चल मम घोटक। टिक् टि्क।।

चल रे, चल रे। टि्क टि्क टि्क।।

पीतं् पयः। कृता बहुखेला।।

अधुना रे। गमनीया वेला।।

**गुण–**

1. यह शिक्षण की अत्यन्त ही सहज पद्धति है।
2. गति और अभिनय में छात्रों की सक्रियता बढ़ती है।
3. संगीत की शिक्षा का भी अवकाश है।

**दोष–**

1. इस विधि के द्वारा केवल सामान्य स्तर के ही पद्य पढ़ए जा सकते हैं।
2. उच्च कक्षाओं में इसका प्रयोग हास्यास्पद हो सकता है।
3. गम्भीर तथा महत्वपूर्ण कविताओं का अध्यापन इस विधि द्वारा सम्भव नहीं है।

**<u>तुलना विधि–</u>** पद्य को समझाने के लिए एवं तुलनात्मक दृष्टि से मूल्यांकन करने के लिए तुलना विधि सहायक है। जब पद्य को व्याख्यानादि विधियों द्वारा समझा दिया जाता है, तब उसके पश्चात् अध्यापित कविता के भाव से मिलती–जुलती किसी अन्य पद्य को छात्रों के समझ प्रस्तुत किया जाता है।

**समभाव कविता के प्रकार–** 1. अध्यापित कविता के कवि द्वारा उसी भाषा में लिखी हुई अन्य कविता

2.उसी कवि द्वारा अन्य भाषा में लिखी हुई कविता।

**<u>गुण–</u>**

1. इस विधि के प्रयोग से छात्रों का अन्य साहित्य से भी परिचय हो जाता है।
2. छात्रों में पाठय–पुस्तक के अतिरिक्त अन्य साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

**<u>दोष–</u>**

1. सम्पूर्ण कविता को इसी विधि द्वारा नहीं पढ़ाया जा सकता।
2. यह उच्च कक्षाओं में प्रयुक्त होने वाली विधि है।
3. समभाव की कवितओं का उपलब्ध होना कठिन है।

## <u>पद्य शिक्षण का अभ्यास कार्य</u>

अधमा धनमिच्दन्ति धनं मानं च मध्यमाः।

उत्त्मा मानमिच्दन्ति मानो हि महतां धनम्।।

1. **रिक्त स्थान की पूर्ति करें।**
   (क) ..................मानम् इच्छति। ( उत्तमा / अनुउत्तमा
   (ख)....................धनम् इच्छति। (अधमाः / उत्तमाः)
2. **समानार्थक पदों का मेंल करें।**

| | | |
|---|---|---|
| (क) विद्वान | – | कारणम् |
| (ख) हेतुः | – | कुम्भः |
| (ग) घटः | – | तायम् |
| (घ) जलम् | – | सदनम् |
| (ङ) गृहम | – | हस्ति |
| (च) गजः | – | विज्ञः |

3. **एक पद में उत्तर दे–**
   (क) के धनम् इच्छति ?
   (ख) उत्तमा किम् इच्छन्ति ?
   (ग) धनं मानं च कः इच्छन्ति ?

## गद्य–शिक्षण

मानव ने प्रारम्भ में साहित्य– रचना पद्य में की, परन्तु जैसे–जैसे उसके विचारो में प्रगल्भता आती गई, वैसे–वैसे वह उन्हें पूर्ण रूप से स्पष्ट करने के लिए गद्य का आश्रय लेता गया। गद्य शब्द की व्युत्पत्ति "गद्यते अनेन इति गद्यम्" की जाती है। गद्य शब्द व्याकरण की दृष्टि से गद् व्यक्तायाम् वचि धातु से बना है, अर्थात् गद्य द्वारा बात पूरी तरह कहीं जा सकती है। इसी दृष्टि से कवियों ने गद्य की प्रशंसा करते हुए कहा है– "गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"।

अर्थात् गद्य कवियो की कसौटी कही जाती है। पद्य लेखन में तो कवि छन्द के बन्धन में बंधा हुआ सा प्रतीत होता है। परन्तु गद्य में किसी प्रकार का बन्धन न होने के कारण लेखक को अपनी बात कहने की पूरी छूट होती है। गद्य लेखन का आरम्भ वैदिक काल से ही हो चुका था। कृष्णयजुर्वेद की तैत्तरीय संहिता में सर्वप्रथम गद्य का उपयोग हुआ है। बींसवी शताब्दी में संस्कृत गद्य का पुनरूत्थान होन पर अनेक विद्वानों ने गद्य–ग्रन्थ लिखें। इधर संस्कृत की पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों इत्यादि में गद्य का प्रचुरमात्रा में व्यवहार होने लगा है। अतः संस्कृत गद्य की सम्पन्नता व्यापक स्तर पर मौजुद है।

### गद्य शिक्षण के उद्देश्य–

1. शब्द साधन, व्युत्पति, शब्द निर्माण आदि के द्वारा शब्दों के अर्थो का स्पष्टीकरण।
2. वाक्यों के प्रवाह तथा विराम आदि चिन्हों के अनुसार उचित स्वर के प्रयोग से पढ़ने का अभ्यास कराना।
3. संस्कृत–भाषा का परिचय देकर संस्कृत–शिक्षण में रूचि उत्पन्न करना।
4. सरल संस्कृत वाक्यों द्वारा भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करने की क्षमता उत्पन्न करना।
5. विविध गद्य शैलियों से परिचय करवाना।
6. उच्च कोटि के साहित्य के अध्ययन से छात्रों चारित्रिक विकास की प्रेरणा देना।

### गद्य शिक्षण के पद –

गद्य–शिक्षण भाषा–शिक्षण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रिया है। इसके द्वारा हम शब्दभण्डार, अर्थज्ञान, व्याकरणबोध, वाक्यविचार, भाव तथा रचना–शैली का परिचय प्राप्त करते है। गद्य शिक्षण के अनन्तर छात्र भाषा की अन्य विधाओं में सरलता से प्रवेश कर सकते हैं। अतः अध्यापक को गद्य शिक्षण से पूर्व भाषा की अच्छी तैयारी कर लेनी चाहिए। इसके लिए अध्यापक को निम्नलिखित गद्य शिक्षण–पद्धति का अनुसरण करना चाहिए।

1. **प्रश्नोत्तर पद्धति** – प्रश्नोत्तर पद्धति प्राचीन पद्धति है। पद्यशिक्षण में जो खण्डान्वय विधि का प्रयोग किया जाता है। उसी पद्धति को यहां प्रश्नोत्तर विधि को संज्ञा दी जाती है। गद्य शिक्षण में प्रत्येक वाक्य को यदि प्रश्नोत्तर माध्यम से उद्दिश्य करके पाठ का प्रबनध करते हैं तो उसे प्रश्नोत्तर पद्धति आश्रित कह सकते है। इस पद्धति द्वारा सम्पूर्ण गद्यपाठ को प्रभावपूर्ण तरीके से तथा सम्पूर्ण अधिकार के साथ सम्पादित कर सकते है, और छात्र भी सक्रिय रूप से अधिव्यक्ति प्रदान करते है।
2. **परम्परागत पद्धति** – इस पद्धति में अध्यापक कक्षा मे प्रवेश करने के बाद जिस गद्यखण्ड के पढ़ाने की इच्छा करता है। उसको उद्दिश्य करके सर्वप्रथम एक–एक वाक्य को स्वयं पढ़ता है तथा गद्य में आये हुए कठिन शब्दों का अर्थ बताता है

साथ ही साथ व्याकरणदि अंशो को स्पष्ट करते हुए गद्य पढ़ाता है। इस पद्धति में आदर्शवाचन, अनुवाचन, श्यामपट्ट इत्यादि की सहायता अपेक्षित नहीं है। इस विधि में छात्रों की सक्रियता, उन्मुखी करण तथा मनोवैज्ञानिकता का अभाव स्पष्ट दिखाई देता है। मुख्य रूप से इसमें व्याख्यान विधि, स्पष्टीकरण विधि का प्रयोग किया जाता है।

3. कथा–कथन विधि – इस विधि को ''प्रवचन विधि'' भी कहते है। पुराणकथा, पंचतंत्र, हितोपदेश, दशकुमारचरितम् कादम्बरी इत्यादि बहुत सी कथाएँ है। उन कथाओं को पढ़ाने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है।
4. **आधुनिक पद्धति** – यह पद्धति हरबर्ट के पंच सोपान से सम्बन्धित है। इस पद्धति में पहले पूर्व ज्ञान से आश्रित प्रस्तावना की जाती है। तदन्नतर आदर्श वाचन, अनुकरण वाचन, ऋषि संशोधन किया जाता है। उसके बाद पाठ का प्रबन्ध होता है। पाठप्रबन्ध में छात्र की क्रिया प्रमुख होती है। अर्थात् इसमें प्रश्नोत्तर विधि का आश्रय लिया जाता है। प्रारम्भ में अध्यापक प्रश्नों को पूछता है और छात्र उसका समाधान करते है। उसके बाद सरकथन, मौनवाचन, पुनरावृति प्रश्न, कक्षाकार्य, गृहकार्य, आकलन मूल्यांकन इत्यादि सोपान को अवकाश दिया जाता है। यह मनौवैज्ञानिकी पद्धति छात्रों को सक्रिय रखती है। और छात्र पढ़े हुए पाठ पर शीघ्र ही अधिकार कर लेते है।

**गद्य शिक्षण का अभ्यास कार्य**

**शश–सिंह कथा**

एकस्मिन् वने एकः भयंकरः सिंह वसति स्म। स वने.........

..........................................................................................

..........................................................................................अतः कथयन्ति

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य।

1. रिक्त स्थान पूर्ति प्रश्नाः

(क) एकस्मिन.....................एकः भयंकरः सिहः वसति स्म।

(ख) सर्वेः पशवः.....................अभवन्।

**2. <u>मिलान करे।</u>**

(क) सिंह – भीताः

(ख) शशः – गर्जति

(ग) वने – वसति।

**3. <u>लघुत्तरीय प्रश्नाः</u>**

(क) सिंह कुत्र वसति ?

(ख) कः भयंकरः ?

(ग) कस्य बलम् ?

**व्याकरण शिक्षण की विविध विधियाँः–**

(व्याकरण–शिक्षण की विविध विधियां एवं नवाचार)

1. सूत्र प्रणाली– सूत्र विधि संस्कृत व्याकरण शिक्षण की प्राचीनतम विधि मानी जाती है। इस विधि में कण्ठस्थीकरण को अत्यंत ही महत्वपूर्ण माना जाता है। इस विधि के द्वारा किसी भी शास्त्र का अध्ययन करके उस विषय में पूर्ण अधिकार प्राप्त किया जा सकता है। प्राथमिक स्तर पर सूत्र विधि के द्वारा शब्द रूप, धातुरूप, एवं अमरकोश इत्यादि की पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है। माध्यमिक स्तर पर लघुसिद्धांत कौमुदी का अध्ययन तथा सामान्य रू॰ से संस्कृत वाङ्मम के गद्य पद्य का परियच करवाया जा सकता है।
2. आगमन पद्धति विधि– उदाहरण प्रस्तुत करने के उपरान्त नियम का निर्धारण करना आगमन विधि कहलाता है। जोसफलेण्डन कहते हैं कि यदि छात्रों के समक्ष बहुत सारे उदाहरण, तत्व, वस्तुएं हमारे द्वारा प्रस्तु किया जाता है, उसके बाद नियम का निर्धारण किया जाता है तो उस विधि को आगमन विधि की संज्ञा दी जाती ह।। यह एक मनौवैज्ञानिक विधि है। इस पद्धति के द्वारा सभी भाषाओं में मनोवैज्ञानिक रीति से व्याकरण का अध्ययन करवाया जा सकता है। लक्ष्य का प्रदर्शन करके लक्षण की परिकल्पना ही आगमन विधि है। इस तिथि में ज्ञात से अज्ञात के प्रति विशेष से सामान्य के प्रति, स्थूलसे सूक्ष्म की ओर इत्यादि शिक्षण सूत्रोंको अन्तर्निहित किया गया है। समान धर्म वाले पद समूहों को समान वर्ग में वर्गीकृत करके छात्रों की सहायता से श्यामपट्ट पर लिखवाना चाहिए। यथा– नर+इन्द्र= नरेन्द्र, देव+इन्द्र=देवेन्द्र, लंका+ईश=लंकेष, प्रथम शब्द के अन्तिम वर्ण में कौन सा स्वर है?
   द्वितीय पद के आदि (आरम्भ) में विद्यमान स्वर वर्ण क्या है?
   इस प्रकार से छात्रों को पूछना चाहिए। पूर्व पद का अन्तिम स्वर अ,आ+इई=ए, अआ+उ=ओ, अआ+ऋ=अर् ह्रस्व, दीर्घ आकार के बाद ह्रस्व दीर्घ इउऋ वर्ण यदि पर ये हो तो क्रम से ए ओ, अर् आदेष होता है, यह छात्र स्वयं समझने लगते हैं।
   आगमन विधि के निम्नलिखित चार सोपान हैं–
   1. उदाहरण प्रस्तुति
   2. निरीक्षण
   3. नियमनिर्धारण
   4. परीक्षण

   निगमन पद्धति– लक्षण को प्रदर्शित करके तथ्य का निर्धारण करना निगमन विधि कहलाती है। इस विधि में अध्यापक सर्वप्रथम नियम को उपस्थापित करके कुछ उदाहरण के द्वारा उक्त निम को लक्ष्य में समन्वय करता है। वस्तुतः आगमन–निगमन पद्धति के मध्य कोई विरोध नहीं है। आगमन पद्धति के लिए निगमन पद्धति पूरक मानी जाती है। निगमन पद्धति में परम्परागत पद्धति सूत्र पद्धति ये सब अन्तर्निहित हैं।

   सामान्य शब्दों में सूत्र के अनुसार उदाहरण का निर्धारण करना निगमन पद्धति कहलाता है। यह विधि सामान्य से विशेष के प्रति काल्पनिक से सत्य की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर इत्यादि शिक्षण सूत्रों पर आश्रित है। उपर्युक्त निर्देशित समालोचना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि निगमन विधि में नियम सूत्र लक्षण के प्रस्ताव के बाद उदाहरण के रूप में प्रयोग का प्रदर्शन होता है। जैसे–''इको यणचि'' इसमें'' इक् के

स्थान पर यण् हो अच्परे होने पर इस नियम को बता कर प्रति +अपि इस उदाहरण में नियम का समन्वय करना निगमन विधि कहलाती है।

निगमन विधि के सोपान–

1. नियम
2. स्पष्टीकरण
3. प्रयोगप्रदर्शन
4. पुनःपरीक्षण

परम्परागत पद्धति– परम्परागत शिक्षा व्यवस्था में जिन विधियों को प्रयुकत कियागया है उनके समेकित स्वरूप को ही परम्परागत विधि कहा जाता है। ये विधि अनादि काल से प्रचलित है। तथा भारतीय शिक्षा का प्रतिनिधित्व करती आ रही है। मठों में, गुरूकूलों में, आश्रमों में तथा परिवारों में इस पद्धति के द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस पद्धति में व्याख्यान, विवरण, स्पष्टीकरण, कथाकथन इत्यादि प्रणाली का प्रयोग देखने को मिलता है। पाठ्यपुस्तक विधि, सूत्रविधि अनौपचारिक विविध इत्यादि को भी प्रस्तुत किया जाता है

ह्यूरिस्टिक विधि– ''मित भाषेत, बहु कुर्वीत'' अर्थातृ कम बोलना अधिक कार्य करवाना। इसी सिद्धांत पर आधारित है ह्यूरिस्टिक विधि। इस विधि में शिक्षक छात्रों को बहुत ही कम पढ़ता है, ओर उनको अन्वेषण के लिए अधिक प्रोत्साहित करता है। Herbert Spencer महोदय के हरवर्टीय सिद्धांत के आधार मानकर प्रो. एन.ई.आर्गस्टॉग (Pro H.E.Axmstrong) महोदय ने उन्नीसवीं शताब्दी में विज्ञान विषय में शिक्षण के लिए इस विधि का आविष्कार किया। विद्यलायों में विज्ञान विषय को अनिवार्य रूप सें पाठ्यक्रम में संयोजित किया गया, तब प्रयोगशाला और उपकरणों के बिना कैसे शिक्षक बच्चों को पढ़ाये यह समस्या उत्पन्न हुई। आर्यस्टॉग महोदय ने सरल रूप से उपकरणों के बिना ही विज्ञान शिक्षण के लिए इस विधि को बनाने का प्रयास किया। तब से ही इसका स्वतंत्र विधि के रूप में प्रयोग होने लगा। आज इसका प्रयोग न केवल विज्ञान शिक्षण के लिए अपितु गणित, व्याकरण, प्राकृतिक विज्ञान इत्यादि विषयों के लिए भी किया जा रहा है। इस विधि में छात्र स्वयं तत्व का अन्वेषण करता है और अध्यापक उसके लिए व्यवस्था बनात है। यदि आवश्यकता हो तो केवल मार्गदर्शक के रूप में कार्य करता है। छात्रों को तत्वों के अन्वेषण के लिए एवं निरीक्षण के लिए पर्याप्त अवसर मिलता है। छात्र तत्वों को स्वयं विविध उपकरणें की सहायता से देखकर नियम एवं मूलभूत तत्व तक पहुंचते हैं। छात्रों को तत्व के विषय में पढ़ाया नहीं जाता अपितु वे स्वयं अन्वेशक बनकर तत्वों का अन्वेषण करते हैं। इसमें छात्र स्वयं अपनी समस्या का समाधान बिना किसी सहायता के स्वयं अपने परिश्रम एवं प्रयास से प्राप्त करते है। यह विधि छात्रों को शोध कार्य के लिए प्रेरित करती है।

ह्यूरिस्टिक विधि के निम्न सोपान हैंः–

1. समस्या का प्रस्ताव
2. तत्व का निरीक्षण और सारणी निर्माण
3. परिकल्पना
4. परीक्षण
5. नियम निर्धारण

यात्रा विधि (Excruscion method) – यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है। यह छात्रों की रूचि पर निर्भर करता है। छात्र प्रायः प्राकृतिक वातावरण में ज्ञान अर्जि करते हैं इसलिए मास में एक बार छात्रों को प्राकृतिक वातावरण में व्याकारण के व्यवहारिक अध्ययन के लिए यात्रा पर अध्यापक को लेकर के जाना चाहिए। भाषा–व्याकारण की शिक्षा जिस स्थान पर दी जाती है, उसकी अपेक्षा इसलिए यात्रा विधि के माध्यम से छात्रों को मुक्त वातावरण में विभिन्न प्रकार के व्याकरण तत्वों के महत्व को समझा कर व्यवहार करने का अवसर देना चाहिए।

प्रयोगशाला विधिः– जिस प्रकार विज्ञान का प्रयोगशाला होता है, उसी प्रकार संस्कृत संबंधित भाषा प्रयोगशाला का विकास का ज्ञान दिया जा सकता है जैसे–वचन के ज्ञान के लिए – अयं गजः तौ बालकौ। कारण के ज्ञान के लिए–नगरम् परितः वृक्षाणि सन्ति। भार्गभुथयतः क्षेत्राणि सन्ति! स्मास के ज्ञान के लिए–अयं बालः व्याघ्रभीतः, इयं चन्द्रमुखी। इसी प्रकार अन्य विषयों से संबंधित भाषा प्रयोगशाला का निर्माण किया जा सकता है।

## प्रश्न पत्र निर्माण कला

प्रश्न का निर्माण कर छात्रों से उनका उत्तर पूछना शिक्षण प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। सम्प्रति प्रश्नों के निर्माण पर विशेष महत्व दिया जा रहा है। प्राचीन काल में मौखिक शिक्षण होने के कारण मौखिक प्रश्नों को ही पूछने की परम्परा थी। लिखित शिक्षण प्रक्रिया में लिखित प्रश्न पूछने की परम्परा विकसित हुई। यद्यपि प्रश्न निर्माण की कला अति प्राचीन है जिसका उदाहरण श्रीमद्भगव् गीता है जिसमें अर्जुन के द्वारा भगवान कृष्ण से अनेको प्रश्न पूछे गए तथा भगवान के द्वारा उन प्रश्नों का समाधान भी क्रमशः किया गया। वर्तमान समय में प्रश्नों के निर्माण की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जिससे शिक्षण प्रक्रिया को अद्यतन एवं आधुनिकी प्रक्रिया में समाविष्ट किया जा सके।

पाश्चात्य शिक्षा के भारत में आगमन के साथ शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन आया और उसी परिवर्तन के साथ ही शिक्षा के उद्देश्य में भी बदलाव आया। पहले प्रश्न पत्र का निर्माण अप्रमाणिक होता था। जबकी अब प्रश्नों का निर्माण विशेषज्ञों की समितियों के द्वारा तैयार किया जाता है।

### प्रश्नपत्र का स्वरूप एवं आधार

प्रश्न निर्माण से पूर्व विभिन्न पक्षों को आधार बनाया जाता है तथा उसके अधार पर प्रश्नों का निर्धारण किया जाता है –

| उद्देश्य | विषयवस्तु | प्रश्न के प्रकार | कठिनाई का स्तर |
|---|---|---|---|
| –ज्ञानात्मक | –गद्य | वस्तुनिष्ठ | –सरल |
| –अवबोधत्मक | –पद्य | रिक्तस्थान | –औसत |

–कौशलोपयुक्त –व्याकरण लघु –कठिन

अतिलघु

निबन्धात्मक

**ब्लूप्रिंट तैयार करना–**ब्लूप्रिंट एक त्रिआयामी चार्ट है। जिसमें उद्देश्य, विषयवस्तु व प्रश्नों के प्रकार के आधार पर प्रश्नपत्र की सम्पूर्णरूपरेखा तैयार की जाती है।

**प्रश्नपत्र निर्माण के सोपान–** किसी भी प्रश्न पत्र का निर्माण करते समय मुख्य लक्ष्य छात्रों के द्वारा निर्धारित उद्देश्यों की जाँच करना होता है। जिसके निम्नलिखित सोपान हो सकते है।

1. योजना निर्माण
2. ब्लू प्रिंट का निर्माण
3. ब्लू प्रिंट पर आधरित प्रश्नो का निर्माण
4. अंक प्रदान योजना तथा कुंजी निर्माण
5. कार्य विश्लेषण चाट का निर्माण

व्याकरण शिक्षण की विविध विधियां

विश्व की समस्त भाषाओं में संस्कृत का स्थान भाषाशास्त्रियों के अनुसार सर्वोपरि है। समस्त भाषायों को कुछ परिवारों में बांटा गया है।

भाषाई परिवारों के विभाजन क्रम में सबसे विशाल एवं महत्वपूर्ण आर्यभाषा परिवार को माना जाता है। आर्य भाषा परिवार को दो वर्गों में विभक्त किया जाता है। पहला शतम् ओर केंदुम/पुन शतम् को चार उपभाषा परिवार में विभाजित किया जाता है।

1. भारत–ईरानी
2. आरमेनीय
3. अलवानीय
4. बाल्ओस्लाविक या लीथसेस्लाविनिक

शतम् वर्ग की भारत–ईरानी भाषा शाखा सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह संसार की सबसे महत्वपूर्ण प्राचीन भाषा है, इसमें प्राचीन साहित्य भी उपलब्ध है। वैविक संस्कृत भाषा इसकी प्रमुख प्रविधि भाषाएं है जिनमें संस्कृत वाङ्मय की प्रमुख कृतिव`व एवं पारसी का प्राचीन धर्मग्रन्थ अवेस्ता को स्थान दिया गया है जिसका अनुमान अवेस्ता में रचित उद्दरण से लगाया जा सकता है।

तम् अमवन्तं यजतम ्सूरम् दायोहु सविश्तम् मिश्रम् यजाइ जओशाव्यो–अवेस्ता

त अमवन्त यजतं शूरं धामसु शविष्ठं मित्रं यजै होत्राभ्यः

भारतीय आर्य–भाषा का उद्गम भारत–ईरानी उपभाषा वैदिक रूपान्तर परिवार से माना जाता है। इसी परिवार से वैदिक संस्कृत एवं लौकिक  संस्कृत का उद्गम माना जाता है वैदिक भाषा को पूर्व में छन्दस् कहा जाता था।

# इकाई–4

## संस्कृत भाषा का मूल्यांकन

### इकाई की रूपरेखा

- प्रस्तावना
- उद्देश्य
- मूल्यांकन का अर्थ
- मूल्यांकन की परिभाषाएँ
- शैक्षिक मूल्यांकन की आवश्यकता
- शैक्षिक मूल्यांकन का महत्व
- शैक्षिक मूल्यांकन विशेषताएँ
- शैक्षिक मूल्यांकन के प्रकार
- शैक्षिक मूल्यांकन की प्रविधियाँ
- संस्कृति भाषा में मूल्यांकन
- संस्कृत शिक्षण में आकलन एवं मूल्यांकन
- संस्कृत शिक्षण में सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन
- संस्कृत भाषा के मूल्यांकन में ई–संसाधनों का प्रयोग
- संस्कृत की विभिन्न विधाओं का मूल्यांकन
- गद्य शिक्षण एवं मूल्यांकन
- पद्य शिक्षण एवं मूल्यांकन
- व्याकरण शिक्षण एवं मूल्यांकन
- नाटक शिक्षण एवं मूल्यांकन
- कथा शिक्षण एवं मूल्यांकन
- सारांश
- अभ्यास–प्रश्न

**प्रस्तावना :**

वास्तव में हम मूल्यांकन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की ओर ध्यान आकृष्ट करते हैं तो ज्ञात होता है कि शिक्षा–शिक्षण के क्षेत्र में किसी न किसी रूप में मूल्यांकन का अस्तित्व रहा है। अगर प्राचीन काल की बात करें तो जब कोई छात्र किसी गुरुकुल में प्रवेश लेने के लिए इच्छुक होता था तो गुरुकुल के प्रवेशक यानि आचार्य महोदय छात्र की मौखिक परीक्षा लेते थे कि उक्त विद्यार्थी गुरुकुल में वास करने लायक है या नहीं। तदनन्तर मौखिक परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् ही छात्र को प्रवेश मिल पाता था। इस प्रकार देखा जाये तो प्राचीन काल (वैदिक काल) से ही प्रश्नोत्तर, शास्त्रार्थ, तर्क–वितर्क, श्लोक अत्याक्षरी, श्लोक गायन, ऋचा गायन, मंत्रोच्चारण, वाद–विवाद एवं श्लोका परीक्षा के माध्यम से छात्रों का मूल्यांकन होता रहा है। हमारी प्राचीन परीक्षण पद्धति जैसे कि मौखिकी परीक्षा को ग्रिक, रोमवासी तथा यूनान देश के लोगों ने भी अपने यहाँ प्रचारित किया।

कक्षा–कक्ष में शिक्षक अन्तःक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व कुछ लक्ष्यों, उद्देश्यों का निर्धारण करता है तथा उन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु विभिन्न शिक्षण विधियों, श्रव्य–दृश्य, साधनों, तकनीकों, उपागमों एवं अनुदेशनात्मक गतिविधियों को अपने शिक्षण में समाहित करते हुए शिक्षण–अधिगम को प्रभावशाली तथा सफलीभूमत करने के लिए अथक प्रयास करता है। इन अदम्य प्रयासों के बाद एक समय ऐसा आता है जब शिक्षक यह जानने का जिज्ञासु होता है कि हमने कक्षा–कक्ष अन्तःक्रिया में जिन उपागमों तथा जिन शिक्षण विधियों का प्रयोग किया है वह कहाँ तक सफल रही है तथा जिन शिक्षण उद्देश्यों को लेकर पूरे सत्र अध्यापन किया गया है क्या उन उद्देश्यों की प्राप्ति विद्यार्थियों ने की है या नहीं। बस इसी बिन्दुओं की जाँच हेतु प्रथम–शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति द्वितीय–अध्यापन की विधियों, उपागमों की सफलता, तृतीय–विद्यार्थियों की शैक्षणिक उपलब्धि, चतुर्थ–व्यवहारगत परिवर्तन के लिए परीक्षा, परीक्षण, आकलन एवं मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ अपनाता है। इस इकाई में हम इन्हीं प्रक्रियाओं का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

**उद्देश्य :**

संस्कृत भाषा का मूल्यांकन निर्देशित इकाई के माध्यम से प्रशिक्षु शिक्षक निम्न उद्देश्यों की प्रप्ति कर सकेंगे—

1. संस्कृत भाषा में मूल्यांकन सम्बन्धित अवधारणाओं की समझ विकसित करेंगे।
2. मूल्यांकन सम्बन्धी सम्प्रत्ययों के टूल्स तथा शब्दावलियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. भाषायी कौशलों, श्रवण, भाषण, पठन एवं लेखन के क्रमबद्ध सह—संयोजित विकास के परीक्षण में कुशलता प्राप्त कर सकेंगे।
4. संस्कृत के विभिन्न विद्याओं जैसे—गद्य, पद्य, व्याकरण, नाटक तथा कथा शिक्षण के मूल्यांकन में समर्थता प्राप्त करेंगे।
5. प्रश्न पत्र निर्माण की कला में निपुणता प्राप्त करेंगे।
6. संस्कृत शिक्षण में आधुनिक मूल्यांकन पद्धतियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
7. संस्कृत भाषा के मूल्यांकन में कम्प्यूटर (संगणक) की उपादेयता की समझ विकसित कर सकेंगे।

**मूल्यांकन का अर्थ :**

मूल्यांकन का शाब्दिक अर्थ है मूल्य का अंकन। यह किसी व्यक्ति, वस्तु या क्रिया के यथेष्ट महत्व, स्थान एवं स्थिति को दर्शाने की प्रक्रिया के लिए किया जाता है।

"मूल्यांकन किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम के किसी भी एक पक्ष के बारे में सूचना एकत्र करने तथा उसका विश्लेषण और व्याख्या करना है जो इसकी प्रभावकारिता, कुशलता एवं अन्य परिणामों को परखने की एक मान्य प्रक्रिय का एक महत्वपूर्ण भाग है।"

वस्तुतः मूल्यांकन एक सतत् निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है, जिसमें सकारात्मकता के उच्च स्तर पर शिक्षा के उद्देश्यों की सीमा निर्धारित करके शिक्षा प्राप्ति के स्तर को जानकर उचित निर्णय लेने में सहायता करती है। संस्कृत भाषा शिक्षण के सन्दर्भ में मूल्यांकन से अभिप्राय शिक्षक की शिक्षण सम्बन्धी क्रियाओं और इन क्रियाओं के फलस्वरूप छात्रों की उपलब्धियों का मापन करने और उसके आधार पर उनकी अपेक्षित स्थिति को दर्शाने की प्रक्रिया से होता है। किसी स्तर पर भाषा शिक्षण के द्वारा छात्रों के भाषायी ज्ञान एवं कौशलों तथा

उनकी रूचियों एवं अभिवृत्तियों में कितना विकास हुआ है इसकी जानकारी प्राप्त करने के लिए हम जिन पद्धतियों का अनुगमन करते हैं, सर्वप्रथम उन शब्दावलियों को स्पष्ट कर लेना उपयुक्त होगा।

परीक्षा और परीक्षण– सामान्यतः हम देखते है कि परीक्षा और परीक्षण शब्द का प्रयोग एक सन्दर्भ में करते हैं लेकिन इसमें विस्तार की दृस्टि से थोड़ा अन्तर होता है।

परि उपसर्ग पूर्वक ''ईक्ष'' धातु तथा ताप प्रत्यय के योग से परीक्षा शब्द की निस्पत्ति हुई है जिसका शाब्दिक अर्थ भली–भांति जाँच या परख, जबकि विस्तार की दृस्टि से परीक्षण शब्द ज्यादा व्यापक एवं विस्तृत है। इसमें उपलब्धि परीक्षण के साथ मनोवैज्ञानिक परीक्षण बुद्धिपरीक्षा, अभिक्षमता, अभिवृत्ति, रुचि, व्यक्तित्व परीक्षा अर्थात् सभी प्रकार की परीक्षाएं आती है। जबकि परीक्षा शब्द का प्रयोग मूलतः सत्रांतं परीक्षाओं के लिए किया जाता है। अर्थात परीक्षा का सम्बन्ध उपलब्धि परीक्षा से होता है। जबकि परीक्षण का सम्बन्ध उपलब्धि परीक्षा के साथ–साथ मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से भी होता है।

मापन एवं मूल्यांकन – शैक्षिक मापन विद्यार्थियों के अधिगम शिक्षण प्रभावशीलता या किसी अन्य शैक्षिक पत्र की मात्रा विस्तार और कोटी के निर्धारण से सम्बन्धित है।

मापन से अभिप्राय छात्रों के समांक अर्थात अंक देने मात्र से सम्बन्ध रखता है। जैसे एक छात्र को संस्कृत विषय में 50 में से 42 अंक दिये गये। इससे छात्र की उपलब्धि किस स्तर की है यह नही  मूल्यांकित किया बल्कि यह मापा गया कि छात्र 50 में से कितना अंक प्राप्त किया। इसकी तुलना में मूल्यांकन एक क्रमिक प्रक्रिया है जो कि सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली का एक अंग है जो शिक्षा के उद्धेश्यों से घनिष्ट रुप से संबंधित है।

सीधे शब्दों मे समझा जाय तो छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को अंको में व्यक्त करना  मापन का उदाहरण है जबकि छात्रों के प्राप्तांको के आधार पर उनकी उपलब्धि स्तर के सम्बंध में संतोषजनक अथवा असंतोषजनक स्थिति का निर्धारण करना मूल्यांकन का उदाहरण है।

मापन के लिए अधिक श्रम और समय की आवश्यकता नही होती है, परन्तु मूल्यांकन में अधिक श्रम और समय की आवश्यकता पड़ती है।

मापन में अंक प्रदान किये जाते है। उत्तर पुस्तिकाओं की जाँच करके उनमें अंक प्रदान करना की मापन है जबकि अंक प्रदान करने के पश्चात अंको का मूल्य निर्धारित करना ही मूल्यांकन है।

पाश्चात्य शिक्षा शास्त्री राइट स्टोन के अनुसार– मापन में विशेष कुशलताओं तथा योग्यताओं की उपलब्धि के एकांकी पक्षों पर बल दिया जाता है, परन्तु मूल्यांकन में व्यक्तित्व से सम्बन्धित परिवर्तनों तथा शैक्षिक कार्यक्रम के मूख्य उद्धेश्यों पर विशेष बल दिया जाता है।

शैक्षिक मूल्यांकन की परिभाषाएं– यदि हम भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के अभिमत की ओर दृस्टिपात करते है तो निम्नलिखित परिभषाए प्राप्त होती है– कोठारी कमीशन 1964–66 के अनुसार '' मूल्यांकन एक सतत प्रक्रिया है तथा शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अभिन्न अंग है यह शिक्षा के उद्धेश्यों से पूर्ण रुप से सम्बन्धित है मूल्यांकन के द्वारा छात्रों के शैक्षणिक उपलब्धि की ही जाँच नही होती अपितु उसके सुधार में भी अभूतपूर्व सफलता एवं सहायता मिलती है।''

एडम्स के अनुसार –'' किसी प्रक्रिया अथवा वस्तु के महत्व को निर्धारित करना ही मूल्यांकन है। इसी लिए शिक्षण प्रक्रिया अथवा सीखने के अनुभव की उपदेयता की मात्रा के सम्बन्ध में निर्णय करना ही शैक्षिक मूल्यांकन कहलाता है। ''

''मूल्यांकन की परिभाषा एक व्यवस्थित रुप में की जा सकती है जो इस बात को निश्चित करती है कि विद्यार्थी किस सीमा तक उद्देश्य प्राप्त करने में समर्थ रहा।''

व्रेज फील्ड के अनुसार –मूल्यांकन किसी वस्तु अथवा क्रिया के महत्व को कुछ सामाजिक सांस्कृतिक और वैज्ञानिक मानदण्डों के आधार पर चिह्न विशेषों में प्रकट करने की प्रक्रिया है''

वास्तव में  छात्रों के सतत व्यवहारगत परिवर्तनों की पहचान करने में अपनायी जाने वाली प्रक्रियाएं ही शैक्षिक मूल्यांकन कहलाती हैं।

9. शैक्षिक मूल्यांकन अभिभावको को यह जानने में मद्द करता है कि उसके बच्चे की योग्यता एवं आकांक्षा के अनुसार उसे आगे चलकर रुचिगत विषयों का किस प्रकार चयन करना है।

10. मूल्यांकन द्वारा ही शिक्षा के स्वरुप उद्धेश्यों एवं शिक्षा के पाठयक्रम में समाज के प्रभाव का पता चलता है।

शैक्षिक मूल्यांकन के उद्धेश क्या है?— शैक्षिक मूल्यांकन के उद्धेश यद्यपि मापन एवं मूल्यांकन के पूर्व वर्णित संस्थापना से ही स्पष्ट हो जाते हैं फिर भी भाषा शिक्षण में शैक्षिक मूल्यांकन के प्रमुख उद्धेश को निम्नलिखित ढंग से कुटबद्ध किया जा सकता है।

1. ज्ञान की जॉच एवं विकास की जानकारी
2. अधिगम के लिए प्रेरणा
3. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की जानकारी
4. निदान एवं उपचार
5. शिक्षण की सफलता की जॉच
6. पाठयक्रम में सुधार
7. चयन में सहायक
8. शिक्षण सहायक सामग्री की उपादेयता की जानकारी
9. वर्गीकरण में सहायक
10. शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन
11. प्रमाणपत्र प्रदान करना
12. मानकों का निर्धारण

1. ज्ञान की जॉच एवं विकास की जानकारी— छात्र निर्धारित पाठक्रम एवं पाठयचर्या में उद्धेशयों की प्राप्ति किस सीमा तक प्राप्त किये है तथा उनका बौद्धिक विकास किस सीमा तक हुआ है तथा विकास में कौन—कौन से बाधक या साधक तत्व है इत्यादि का जानकारी प्राप्त करना शैक्षिक मूल्यांकन का प्रमुख उद्धेश है।
2. अधिगम के लिए प्रेरणा— मूल्यांकन द्वारा अधिगम के लिए एक मार्ग का प्रशस्तीकरण किया जाता है, जिसके माध्यम से छात्र प्रेरित होकर अध्ययन हेतु तत्पर होता है।
3. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की जानकारी— मूल्यांकन का सबसे बड़ा उद्धेश है कि छात्रों के पारस्परिक व्यक्तिगत भिन्नताओं का पता करना है। जिससे प्रत्येक छात्र को उनकी अन्तर्निहित क्षमताओं, रुचियो, अभिवृत्तियों के अनुसार उचित

दिषा–निर्देश देकर उनको जीवन के रणक्षेत्र में सफल योद्ध के रूप तैयार किया जा सके,

4. निदान एवं उपचार– मूल्यांकन के द्वारा ही एक शिक्षक समझ सकता है। अपेक्षित अधिगम प्रतिफल की प्राप्ति में छात्र को कहां समस्या आ रही है ओर इस समस्या का निदान किस तरह से किया जा सकता है। छात्रों की कमजोरियों का पता लगाकर उन्हें दूर करने में मूल्यांकन का ही सहारा लिया जाता है। मूल्यांकन ही छात्रों की व्यक्तिगत कमजोरियों के निदान एवं उपचार के लिए उत्तरदायी सिद्ध होता है।
5. शिक्षण की सफलता की जॉच– शिक्षण की सफलता किस सीमा तक पायी है शिक्षण कौशलो का समूचित प्रयोग, शिक्षण विधियों का सही अनुप्रयोग, शिक्षण तकनीकी एवं शिक्षण उपागमों की प्रयोग छात्रों की उपलब्धि में सहायक सिद्ध हुआ है कि शिक्षक को इसकी सफलता एवं असफलता के बारे में पता शैक्षिक मूल्यांकन के द्वारा ही होता है।
6. पाठयक्रम में सुधार– मापन एवं मूलयांकन का प्रमुख उद्धेश पाठयक्रम की उपादेयता की जॉच करके उसकी उपयोगिता को बढाने के लिए पाठयक्रम में सुधार करना है।
7. चयन में सहायक– शैक्षिक मूल्यांकन का एक उद्धेश यह भी है कि उपयोगी उपागमों, उपयोगी शिक्षण विधियॉ, तकनीकी उपयोगी पाठयक्रम पाठयचर्या तथा योग्य विद्यार्थियों के चयन में सहायता प्रदान करना है।
8. शिक्षण सहायक सामग्री की उपयोगिता की जानकारी– कौन सी शिक्षण सहायक सामग्री कक्षा कक्ष अन्तःक्रिया में कितना सहायक सिद्ध होगी इसकी समझ एवं जानकारी भी शिक्षक को मूल्यांकन के द्वारा ही प्राप्त होती है वर्गीकरण में सहायक– विद्यार्थियों को विभिन्न समूहों में बॉटने तथा समूह के अनुसार शिक्षण युक्तियों के संचालन में मूल्यांकन सहायक है। मूल्यांकन के द्वारा ही एक तीव्र बुद्धि बालक तथा औसत दर्जे के बालक की पहचान संभव हो पाती है।
9. शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन में सहायक– मूल्यांकन द्वारा ही सम्भव हो पाती है कि विद्यार्थी की रुचि, उसकी समझ एवं अभिवृत्ति उसको किस दिशा में सफलता दिला सकती है। विद्यार्थीयों को मूल्यांकन के द्वारा ही उनकी रुचियों एवं

अभिवृत्तियों के अनुसार मार्गदर्शन एवं निर्देशन करने में सहायता मिलती है। अत' शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है।

10. प्रमाण पत्र प्रदान करना— शैक्षिक मूल्यांकन के उपरान्त ही विद्यार्थीयों को उपलब्धियों का मूल्य निर्धारित करते हुए मापन के द्वारा अंक प्रदान कर उनकी सफलता एवं असफलता को प्रदर्शित करने हेतु प्रमाण पत्र प्रदान करने मे सहायक है।
11. मानकों का निर्धारण— मूल्यांकन द्वारा ही छात्रों की उपलब्धियों की प्रासंगिक व्याख्या एवं मानकीक्रम के लिए वैधता एवं विश्वसनीयता से युक्त टूल्स का निर्धारण एवं नियमन किया जाता है। उपयुक्त उद्धेशयों को ध्यान में रखकर शैक्षिक मूल्यांकन को प्रशासित किया जा सकता है।

शैक्षिक मूल्यांकन का महत्व— शैक्षिक मूल्यांकन का महत्व सार्वभौमिक है। शैक्षिक मूल्यांकन शिक्षा—शिक्षक एवं छात्र की एक त्रीस्तरीय कड़ी को पूरा करता है, जो नित्य नये आयामों की समझ एवं जानकारी से सम्बद्ध है इसके अतिरिक्त भी शैक्षिक मूल्यांकन के महत्व को निम्न विन्दुओं से समझा जा सकता है—

1. मूल्यांकन अर्थात मूल्य का अकंन करना। मूल्यांकन मूल्य निर्धारण करने की एक प्रक्रिया है शिक्षा प्रक्रिया से सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियों विशेषकर छात्रों, अभिभावकों, अध्यापको तथा समाज के लिए शैक्षिक मूल्यांकन का सर्वाधिक महत्व है।
2. मूल्यांकन के द्वारा ही छात्रों को उनके स्वयं की शैक्षिक प्रगति का ज्ञान होता है। इससे उनमें प्रेरणा, आत्मसंतोष, आत्मविश्वास एवं आगे बढने की जज्बा का विकास होता है। साथ ही साथ छात्रों को उनके कमियों की भी जानकारी प्राप्त होती है जिसे वो भविष्य में दूर करने के लिए अहर्निश प्रयत्न करते है।
3. मूल्यांकन के द्वारा अध्यापक पाठयक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षण तकनीक, पाठयोजना, शिक्षण सामग्री आदी की प्रभावशीलता की जानकारी प्राप्त करते है और यदा कदा उसमें आवश्यकता अनुसार संशोधन करते रहते हैं।
4. मूल्यांकन की सहायता से अध्यापक विद्यार्थियों की रुचियों, योग्यताओं, क्षमताओं, व्यक्तित्व, सामर्थ्य, कमियों आदि की पहचान कर उन्हे उचित मार्ग दर्शन करने में समर्थ हो पाते है।

5. शैक्षिक मूल्यांक के माध्यम से ही विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों की उपयोगिता एवं आवश्यकता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।
6. मूल्यांकन के द्वारा ही शिक्षाशास्त्री, प्रशासक, अध्यापक, छात्र तथा अभिभावक शिक्षण उद्धेश्यों की प्राप्ति सीमा को जान सकते है।
7. शैक्षिक मूल्यांकन शिक्षा में आमूल–चुक परिवर्तन तथा उसके गुणवत्ता के चरमोत्कर्ष में अत्यंत आवश्यक है।

एक अच्छे मूल्यांकन की विशेषताए– शैक्षिक मापन एवं मूल्यांकन में उसकी आवश्यक्ता, उपयोगिता, उद्धेश्य एवं महत्व को ध्यान मे रखते हुए उसकी निम्न विशेषताएं सर्व प्रमुख मानी जाती है–

1. मूल्यांकन की वैधता
2. मूल्यांकन की विश्वसनीयता
3. मूल्यांकन की व्यावहारिकता
4. मूल्यांकन की न्यायसंगतता
5. मूल्यांकन की उपयोगिता
6. मूल्यांकन की वस्तुनिष्ठता
7. मूल्यांकन की व्यापकता
8. मूल्यांकन मे विभेदीकरण

1. मूल्यांकन वैध होना चाहिए– एक बैध मूल्यांकन वह होता है जो वास्तव में वही ज्ञात की करे जिसके लिए उसका निर्माण किया गया है। अर्थात किसी प्रश्नपत्र का निर्माण हम जिन उद्धेश्यों एवं लक्ष्यों को ध्यान में रखकर करते है और यह वह इन्ही उद्धेश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति करता है तो वह वैध है। उदाहरण के लिए संस्कृत भाषा शिक्षण में मेरे द्वारा बताया गया प्रश्नपत्र संस्कृत व्याकरण में सन्धियों के ज्ञान से छात्रों के ज्ञानात्मक पक्ष की जानकारी प्राप्त करना है। और मेरा प्रश्नपत्र छात्रों के क्रियात्मक पक्ष अनुवाद बनाने की जानकारी प्राप्त करने में समर्थ है तो मेरे द्वारा बनाया गया प्रश्नपत्र वैध नही है। अतः यह आवश्यक है कि मूल्यांकन जिस निमित्त किया गया है वह वास्तव में उसकी जॉच करे तभी वह बैध है।

2. मूलयांकन विश्वसनीय होना चाहिए— विभिन्न परिस्थितियों परन्तु समान परिस्थितियों में किसी पश्न परीक्षण या परीक्षा का उत्तर पूर्णतः एक की प्रकार का होगा तो ऐसा मूल्यांकन विश्वसनीय होगा। तात्पर्य यह है कि सामान्य बुद्धि की समरसता या समानता बराबर होनी चाहिए जैसे कि आठवी कक्षा का संस्कृत प्रश्नपत्र आठवी कक्षा के ही विद्यार्थियों का मूल्यांकन करे ना कि सातवीं कक्षा के। दूसरे तरह से इसे ऐसे समझा जा सकता है कि परीक्षक चाहे किसी भी योग्यता के हों मूल्यांकन प्रायः एक सा होना चाहिए। जहॉ पर एक ही प्रश्न पत्र को अनेक परीक्षक जांचते हो उनके अंक समान होना चाहिए जैसे एक प्रश्न के उत्तर पर शिक्षक 10 अंक देता तथा दूसरा शिक्षक उसी प्रश्न के उत्तर पर 4 अंक देता है तो यह मूल्यांकन विश्वसनीय नही माना जायेगा अतः मूल्यांकन का विश्वसनीय होना अत्यंत आवश्यक है।
3. मूल्यांकन व्यावहारिक होना चाहिए— मूल्यांकन की सम्पूर्ण प्रक्रिया समय, श्रम, लागत एवं उपयोगिता की दृस्टि मे वास्तविक, कुशल, सहज, सरल, आडम्बरविहीन एवं व्यावहारिक होनी चाहिए। मौखिक या लिखित परीक्षाओं का प्रशासन इतना सरल एवं सहज होना चाहिए कि परीक्षा के उपकरण भी सर्व सुलभता हो जिससे मूल्यांकन सवर्था व्यावहारिक सिद्ध हो।
4. मूल्यांकन न्यायसंगत होना चाहिए— मूल्यांकन सभी विद्यार्थियों के लिए समान रुप से न्याय सेगत ही होना चाहिए और यह उसी दशा में सम्भव है जब सम्पूर्ण परिक्षार्थियों को परीक्षण के उद्धेश्य, अवसर एवं प्रगति के विषय में अवगत कराया जाय। सम्पूर्ण विद्यार्थियों को पता हो कि उनका जिस विषय वस्तु का मूल्यांकन होना है। इसका सीधा सा अर्थ है विद्यार्थियों को परीक्षण से सम्बन्धित टूल्स, प्रकृति, उद्धेश्य सामग्री, प्रकार एवं परिस्थिति के विषय में सूचना मिलनी चाहिए। ऐसा मूल्यांकन न्याय संगत होता है।
5. मूल्यांकन उपयोगिता आधारित होना चाहिए— मूल्यांकन उपयोगी होनी चाहिए। विधाथियों को इसके परिणामों के विषय में जानकारी होनी चाहिए कि वह अपनी कमजोरियों को दूर करके अपने मजबूत पक्ष को समृद्ध बनाये रखने के लिए अथक प्रयास करे तथा जिन बिन्दुओं में कमजोर है उनको सुदृढ करने का प्रयास करे। मूल्यांकन से ही उसे पता लगता है कि मुझे किस दिशा मे और अधिक प्रयस करना चाहिए।

6. मूल्यांकन में वस्तुनिस्ठता होनी चाहिए– मूल्यांकन व्यक्तिनिस्ठ नही अपितु समस्टिनिस्ठ होना चाहिए मूल्यांकन पक्षपात रहित हो किसी एकपक्ष को इंगित न करके विद्यार्थियों के सम्पूर्ण पक्ष का मूल्यांकन करे। अतः वस्तुनिस्ठता में प्रश्न का उत्तर पूर्णतया स्पस्ट होता है उसमें किसी भी प्रकार से भ्रान्ति नही रहती है।

7. मूल्यांकन में व्यापकता होनी चाहिए– मूल्यांकन का क्षेत्र व्यापक होता है। इसमें मूल्यांकन के तीनों पक्ष जैसे कि ज्ञानात्मक, भावात्मक (बोधात्मक) एवं क्रियात्मक (प्रयोगात्मक) सम्मिलित होने चाहिए जिससे की छात्रों का सर्वागीण विकास सम्भव हो सके। मूल्यांकन की रुपरेखा पूर्णरुप से आन्तरिक एवं वाहय विकास का अवलोकन करने में समर्थ हो। मूल्यांकन में पश्नों के प्रारुप में एक व्यापक दृस्टिकोण दृस्टिगोचर होना चाहिए।

8. मूल्यांकन में विभेदीकरण की क्षमता हो– छात्रों को उनकी योग्यता, आकांक्षा, अभिवृत्तियों, रुचियों एवं पसन्द ना पसन्द के आधार पर विभेद करने की समर्थता हो जिससे छात्रों को निम्न, मध्यम एवं उच्च स्तर में वर्गीकृत करके विशेष युक्तियों का सहारा लिया जा सके। जिस उद्धेश्य को ध्यान में रखकर मूल्यांकन किया जाय उस उद्धेश्य की प्राप्ति में सहायक मापन एवं मूल्यांकन ही विभेदीकरण की क्षमता रखता है।

**मूल्यांकन के प्रकार**

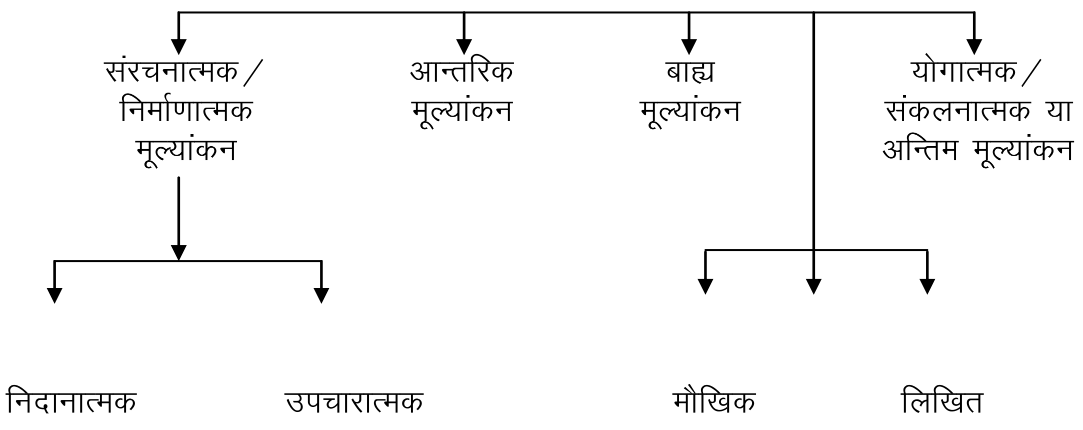

1. संरचनात्मक मूल्यांकन – संरचनात्मक मूल्यांकन से अभिप्राय किसी ऐसे शैक्षिक कार्यक्रम योजना, प्रक्रिया अथवा सामग्री आदि के मूल्यांकन से है जिसमें मूल्यांकन के आधार पर सुधार करना संभव हो। दूसरे शब्दों में संरचनात्मक मूल्यांकन किसी शैक्षिक कार्यक्रम योजना प्रक्रिया भी सामग्री की प्रभावशलीता, गुणवत्तापूर्णता, वांछनीयता तथा उपयोगिता और अधिक उन्नत बनाने का प्रयास है। अतः स्पष्ट है कि संरचनात्मक मूल्यांकन में किसी निर्माणाधीन कार्यक्रम योजना या प्रक्रिया या विद्यार्थी या सामग्री को अंतिम रूप देने से पूर्व उसके प्रारम्भिक प्रारूप का मूल्यांकन किया जाता है जिससे उसकी संरचनागत कमियों को भली–भाँति दूर किया जा सके।

अतः स्पष्ट शब्दों में कहा जा सकता है कि संरचनात्मक मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य शैक्षिक कार्यक्रम एवं विद्यार्थियों की कमियों को इंगित करना तथा उन्हें दूर करने के उपाय बताना है।

(क) निदानात्मक परीक्षण – शिक्षा के क्षेत्र में बालकों की शिक्षा सम्बन्धी कठिनाइयों को जानने के लिए निदानात्मक परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। यह परीक्षण किसी विशिष्ट विषय वस्तु अथवा अधिगम जन्य अनुभव के अर्जित की विशिष्टता एवं कमी का मूल्यांकन करता है। निदानात्मक परीक्षाएँ किसी विशिष्ट वस्तुगत इकाई में प्राप्त गुणों के आधार पर छात्रों के सुधार हेतु परामर्श प्रदान करती है। छात्रों को सफलता क्यों नहीं मिली? इसके कारणों को जानने के लिए निदानात्मक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। वास्तव में निदानात्मक परीक्षणों का उद्देश्य विशिष्ट विषय–वस्तु अधिगम इकाई में प्राप्त गुणों के आधार पर बालक के शैक्षिक विकास में सुधार हेतु परामर्श देना है। निदानात्मक परीक्षण का प्रमुख कार्य छात्रों की विषय सम्बन्धित कठिनाइयों और कमजोरियों को ज्ञात करना है।

(ख) उपचारात्मक परीक्षण – उपचारात्मक शब्द औषधीशास्त्र से लिया गया है। जिस प्रकार चिकित्सा के माध्यम से चिकित्सक व्यक्तियों के विभिन्न रोगों को दूर कर उन्हें उत्तम स्वस्थ करने की कोशिश कराते हैं, उसी प्रकार शिक्षक छात्रों की अधिगम संबंधी त्रुटियों को निदानात्मक परीक्षण से जानकर उन्हें उपचारात्मक परीक्षण के माध्यम से दूर करके, उनको ज्ञानार्जन की उचित दिशा की ओर मोड़ने का प्रयास करते हैं।

उपचारात्मक परीक्षण वास्तव में बहुत ही उत्तम परीक्षण है जो छात्र को अपनी वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्रदान करता है। और जो सुप्रेरित क्रियाओं द्वारा उनको अपनी कमजोरियों के क्षेत्रों में अधिक योग्यता की दिशा में अग्रसर करता है। उपचारात्मक परीक्षण विद्यार्थियों की उस कमजोरी को खोजने का प्रयत्न करता है जो छात्र को अपनी कुशलता या अधिगम सम्बन्धित त्रुटियों को दूर करने में सफलता प्रदान करे।

अतः हम कह सकते हैं कि निदानात्मक परीक्षण में विद्यार्थियों की त्रुटियों का पता लगाया जाता है तथा उपचारात्मक परीक्षण के माध्यम से उन त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है।

2. योगात्मक मूल्यांकन – योगात्मक मूल्यांकन से अभिप्राय है कि किसी पूर्व निमित्त शैक्षिक योजना या सामग्री की विद्यार्थियों की समग्र या यूं कहें कि सम्पूर्ण वांछनीय विकास को ज्ञात करने की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में कहें कि योगात्मक मूल्यांकनकर्त्ता किसी शैक्षिक कार्यक्रम योजना, सामग्री या विद्यार्थियों के गुण–दोषों की जानकारी इसलिए एकत्रित करता है जिससे उसे स्वीकार करने या भविष्य में जारी रखने के सम्बन्ध में निर्णय लिया जा सके। मूल्यांकन विधि तथा छात्रों की सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया संबंधी जानकारी करने हेतु साक्षात्कार, योजना, प्रश्नावली अथवा श्रेणी मापनी आदि उपयुक्त मानक उपकरण अथवा विधि का निर्माण करता है। उसके बाद संबंधी मानकों एवं साक्ष्यों की गणना द्वारा उसकी उपयोगिता को परखता है, और अन्त में यह निर्णय करता है कि यह शिक्षा नीति, योजना, कार्यक्रम, पाठ्यवस्तु शिक्षण, शिक्षण विधियाँ, पाठ्यचर्या, दृश्य–श्रव्य साधन को आगे जारी रखा जाये या नहीं अगर रखा भी जाये तो किस रूप में।

अभिप्राय यह है कि योगात्मक मूल्यांकन का उद्देश्य किसी पूर्व निश्चित एवं लागू शिक्षा नीति, योजना, कार्यक्रम, पाठ्यवस्तु, शिक्षण विधियाँ, शिक्षण सहायक सामग्री छात्रों का उद्देश्यगत विकास (सर्वांगीण विकास) अथवा मूल्यांकन विधियों की उपयोगिता की परख करना तथा इन सब को भविष्य में भी जारी रखने या ना रखने के निर्णय से है।

आन्तरिक मूल्यांकन – यह मूल्यांकन विद्यार्थियों की दैनिक प्रगति उसके द्वारा किये गये गृहकार्य, प्रोजेक्ट वर्क, पाठ्यसहगामी क्रियाओं में लिया गया भाग, विभिन्न खेलकूद, साहित्यिक कार्यक्रमों, प्रतिभागिता आदि परीक्षाओं के परिणाम तथा छात्रों की उपलब्धि पर आधारित होता

है। संस्कृत भाषा में प्रवीण छात्र नियमित, प्रार्थना सभा में सक्रिय सहभागिता कक्षा–कक्ष में प्रतिदिन अन्तःक्रिया में भाग लेने वाले विद्यार्थियों के साथ निष्पक्ष तथा बिना पक्षपात किये हुए उचित आन्तरिक मूल्यांकन किया जाना चाहिए। आन्तरिक मूल्यांकन में शिक्षक विद्यालयीन सातत्य गतिविधियों को मूल्यांकन का आधार बनाता है।

बाह्मय मूल्यांकन – बाह्य मूल्यांकन विद्यालयों, शिक्षरा–परिषदों तथा विश्वविद्यालयों द्वारा आयोजित परीक्षाओं पर आधारित होता है। अर्थात् विद्यालयों द्वारा विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास हेतु सत्र के मध्य या सत्रांत जो मूल्यांकन पद्धतियाँ अपनाई जाती है उन्हें हम बाह्य मूल्यांकन भी संज्ञा दे सकते हैं। बाह्य मूल्यांकन हेतु प्रश्नपत्रों के निर्माण में प्रश्नों की संरचना व परीक्षकों के चयन के प्रति विशेष जागरूक होने की आवश्यकता होती है।

**मौखिक रूप से मूल्यांकन :**

संस्कृत भाषा में भाषायी विधाओं तथा विभिन्न कौशलों, श्रवण, वाचन, पठन एवं लेखन की सम्यक जाँच हेतु मौखिक एवं लिखित दोनों प्रकार की परीक्षाएँ ली जानी चाहिए। संस्कृत भाषा में आधुनिक परिप्रेक्ष्य में लिखित परीक्षाओं को ही मूल्यांकन का आधार बताया जा रहा है जो कि सरासर गलत है। प्राचीन काल में जो विद्यार्थी अपनी मुखाग्र से जितने मंत्रों तथा सूत्रों, ऋचाओं का बिना किसी पुस्तकीय अवलोकन के पाठ कर देता था वह उतना ही कुशाग्र माना जाता था। प्राचीन काल में गुरुकुल पद्धति में बहुत सारी ऐसी मौखिकी परिक्षाएँ प्रचलित थीं, जो आज आधुनिक सदी में अर्थात् 21वीं सदी में संस्कृत भाषा के अध्यापन में उतनी ही समीचीन (उपयोगी) हैं, जितनी की पहले थी। यहाँ हम कुछ मौखिकी परिक्षाओं को उपस्थित करना चाहेंगे जो निम्नवत् है–

(अ) शलाका परीक्षा

(ब) शास्त्रार्थ परीक्षा (तर्क–वितर्क)

(स) सम्वाद (साक्षात्कार परीक्षण)

(द) वाद–विवाद

(य) चयनित गद्यांशों या पद्यांशों का वाचन

(र) प्रश्नावली द्वारा परीक्षण

उपर्युक्त मौखिक परीक्षणों को आज भी संस्कृत भाषा के शिक्षण में अध्यापक रूचिपूर्वक प्रयोग में लाए तो शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को अत्यंत रोचक बनाया जा सकता है तथा छात्र भी संस्कृत भाषा के अध्ययन में निष्ठापूर्वक रूचि ले सकेंगे।

उपर्युक्त वर्णित मौखिक परिक्षाओं को पारम्परिक संस्कृत मूल्यांकन पद्धति के आधार पर अद्योलिखित रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है–

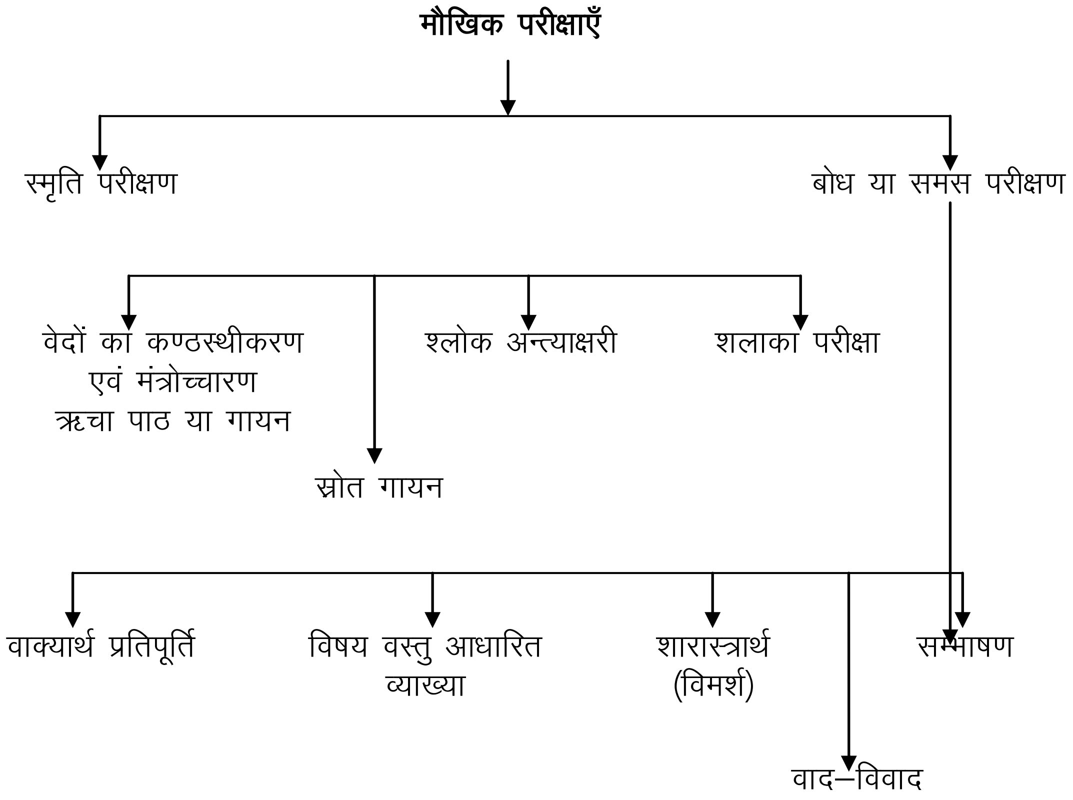


2. लिखित रुप में मूल्यांकन– संस्कृत भाषा में प्राचीन समय में मौखिक परीक्षाएं ही ली जाती थी लेकिन आज भाषा के अध्ययन के स्वरुप के साथ–साथ मूल्यांकन की पद्धतियां भी बदली हैं ज्यादातर परीक्षाएं लिखित रुप में ही ली जाने लगीं है। लेखन कौशल का विकास विद्यार्थियों में हुआ कि नही इसके निमित्त संस्कृत भाषा में लिखित परीक्षाएं ली जाती थी। लेकिन आज सम्पूर्ण कौशलो के जॉच हेतु प्रायः लिखित परीक्षाएं ही ली जाती है। समय, श्रम एवं परीक्षा नियोजन के आधार पर लिखित परीक्षाएं मूल्यांकन को बड़ा ही आसान बना दी है। आज इन लिखित परीक्षाओं की संरचना में अपेक्षित परिर्वतन हुआ है। आज इन परीक्षाओं की संरचना निम्नवत है–

I. निबन्धात्मक प्रश्न– इन प्रश्नों से छात्रों से लम्बे उत्तर की अपेक्षा की जाती है। संस्कृत भाषा में किसी विषय पर निबन्ध लेखन, किसी कवि या महापुरुष के व्यक्तित्व एवं कृत्तित्व पर प्रकाश, संस्कृत साहित्य के विकास संस्कृत से मातृभाषा में अनुवाद तथा मातृभाषा से संस्कृत मे अनुवाद तथा पाठांश का सारांश लिखवाने में निबन्धात्मक प्रश्नों का प्रयोग किया जा सकता है।

II. लघुत्तरात्यक प्रश्न– इस प्रश्न के निर्माण में छात्रों से यह अपेक्षा की जाती है कि वह इनका उत्तर सिमित शब्दों में दे। संस्कृत शिक्षण में किसी सूत्र की व्याख्या सन्धि समाज के नियमों की परिभाषा या किसी कवि की रचनाओं में निहित तत्व के बारे में प्रश्न पूछा जा सकता है।

III. अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न– इन प्रश्नों के उत्तर दो–तीन शब्दों अथवा एक पंक्ति के होते हैं संस्कृत में किसी कवि की रचना, सर्गो अथवा पाठ्यपुस्तकों के लेखकों के नाम से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जा सकते है।

IV. वस्तुनिस्ठ प्रश्न– ये प्रश्न संस्कृत शिक्षण में आज सर्वाधिक प्रचलन में है। इसमे प्रत्यास्मरण, प्रत्यभिज्ञान, रिक्त स्थान, बहुविकल्पात्मक, मिलान पद, आम या न हा अथवा नही (सत्य–असत्य) आदि से सम्बन्धित होते है।

अतः संस्कृत भाषा में लिखित परीक्षा हेतु निर्माण कियें जाने वाले प्रश्नों को निम्न लिखित रेखाचित्र के माध्यम से समझा जा सकता है–

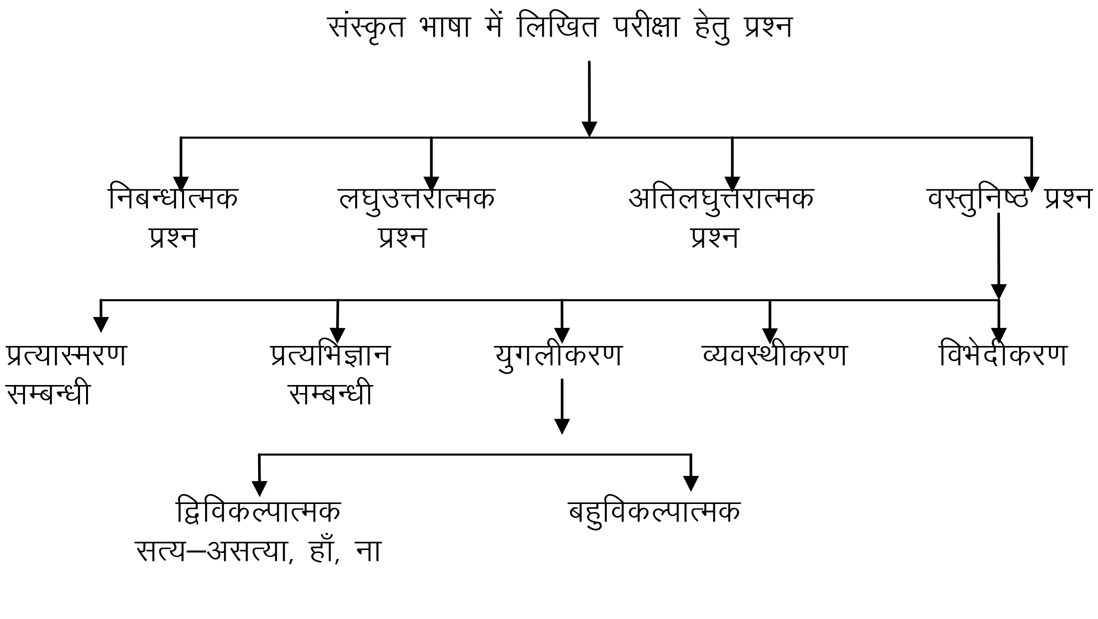

**शैक्षिक मूल्यांकन की प्रविधियाँ :** संस्कृत भाषा के शिक्षण में उक्त वर्णित परीक्षण प्रकारों के अतिरिक्त मूल्यांकन हेतु निम्नलिखित प्रविधियों को अपनाया जा सकता है–

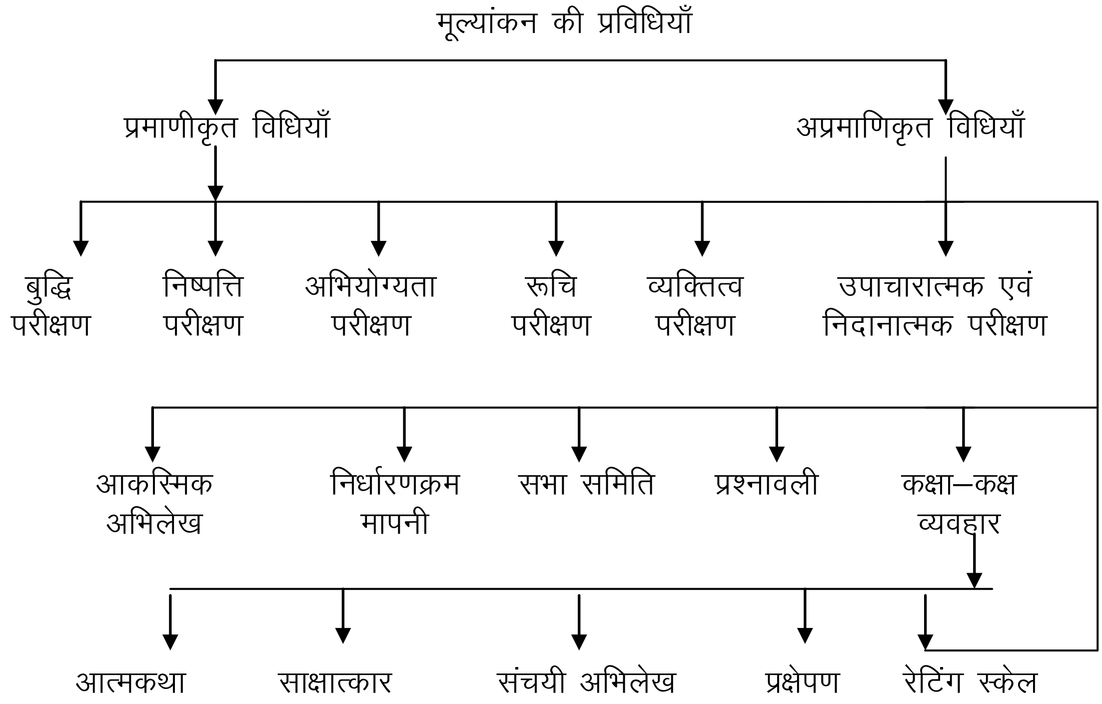


उपर्युक्त मूल्यांकन की प्रविधियाँ संस्कृत शिक्षण को और अधिक सरल एवं सुगम्य बनाती हैं। इनकी समुचित प्रयोग करके प्रशिक्षु शिक्षक शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को अत्यन्त सहज एवं सुगम तथा प्रभावशाली बना सकते हैं।

**शैक्षणिक मूल्यांकन की आवश्यकता क्यों?**

भाषा शिक्षण में अध्ययन अध्यापन का मूल्यांकन एक अभिन्न अंग बन गया है, जिसके माध्यम से छात्रों शिक्षकों एवं अभिभावकों को यह जानकारी प्राप्त हो पाती है कि कक्षा–कक्ष में चलने वाली अन्तक्रिया कितनी सफल हो पायी है, तथा इसे और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए कौन–कौन सी युक्तियों को अपनाने की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त हम देखते कि शिक्षक, विद्यार्थी एवं अभिभावक के लिए शैक्षिक मूल्यांकन की निम्नलिखित आवश्यकताए है–

1. मूल्यांकन के द्वारा शिक्षक को अपनी शिक्षा की योजना, शिक्षण विधियां, शिक्षण के उपकरणों की सफलता के बारे में पता चलता है।
2. शिक्षक को शिक्षण के उद्धेश्यों अथवा अपेक्षित अधिगम प्रतिफल की प्राप्ति हुई या नही इसकी जानकारी प्राप्त होती है।
3. शैक्षिक मूल्यांकन के द्वारा ही शिक्षक को यह पता चल पाता है कि हमने जो भी पढाया है, या हमारी जो भी शिक्षण विधियां है वह कक्षा–कक्ष के उन्नयन में कहाँ तक सफल हो सकी है। शिक्षक अपने छात्रों की उपलब्धियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने में समर्थ हो पाता है।
4. छात्रों को भी यह जानने मद्द मिलती है कि उसके ज्ञान में कितनी प्रगति हो रही है।
5. मूल्यांकन के माध्यम से छात्रों में प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास होता है।
6. मूल्यांकन के द्वारा छात्रों के व्यक्तिगत्व का पता चलता है तथा उन्हे समूह के अनुसार वर्गीकृत करने में सहायता मिलती है।
7. मूल्यांकन के द्वारा ही छात्रों को यह पता चलता है कि उसके व्यवहार को किस प्रकार विकसित एवं परिमार्जित करना चाहिए।

प्रश्न निर्माण कला का आदि परंपरा से वर्तमान तक का सफर–

वैदिक काल– प्राचिनकाल में शिक्षा का आरंभ वैदिक काल से माना जाता है। वैदिक काल की शिक्षा मौखिक एवं गुरु के आश्रम में दी जाती थी। इस काल में विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। गुरु के सेवा के साथ–साथ आश्रम की व्यवस्था एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति भी छात्रों या शिष्यों के द्वारा की जाती थी चूकि इस समय लिखित शिक्षा नही दी जाती थी इस लिए इस काल में प्रश्न निर्माण की कोई प्रमाणिक मानक का प्रश्न ही नही उठता है। गुरु के द्वारा मौखिक रूप से प्रश्न पुछकर ही शिक्षार्थी का मूल्यांकन किया जाता था।

बौद्ध एवं जैन काल– इस काल में शिक्षा बौद्ध एवं जैन के मंदिरो, मठो एवं विहारों में दी जाती थी इस समय शिष्यों को मौखिक एवं व्यवहारिक शिक्षा दी जाती थी। व्यवहारिक रुप से उत्त्तीर्ण होने वाले शिष्यों को ही सफल माना जाता था इसलिए इस समय भी प्रश्न निर्माण की कोई विशिष्ट परंपरा नही मिलती है।

इसके बाद के काल में संस्कृत भाषा का काफी विकास हो चुका था लेकिन वर्तमान की तरह विद्यालयी परंपरा नही थी इसलिए प्रश्न निर्माण की कोई विशेष परंपरा नही देखने को मिलती है।

मध्यकाल– मध्यकाल में भी शिक्षा का केन्द्र मंदिरों एवं मदरसों में देखने को मिलती है। इस समय की शिक्षा भी प्राचीन कालीन शिक्षा की तरह ही थी। शिक्षा लिखित एवं मौखिक दोनो दी जाती थी।

वर्तमान काल– वर्तमान काल में अंग्रजों के आगमन से लिखित परीक्षा का प्रारंभ माना जा सकता है। इस समय से लिखित परीक्षा की शुरुआत मानी जा सकती है।

**प्रश्न पत्र की विशेषता–**

1. प्रश्न संक्षिप्त और बोधगम्य।
2. प्रश्न एक विचार वाले हो
3. प्रश्न किसी उद्धेश्य पर आधारित हो।
4. प्रश्न निश्चित अर्थ देने वाला हो।

5. प्रश्न प्रमाणीकृत हों।
6. प्रश्नों में वैद्यता तथा विश्वसनीयता हो।
7. प्रश्नों का श्रेणी विभाजन तर्कसंगत हो।
8. प्रश्न क्रमनुसार हो
9. प्रश्न कठिनता के स्तर (difficulty level) पर निर्मित हो।
10. प्रश्नों की भाषा सरल और स्पष्ट हो।
11. प्रश्न विचारो को उत्तेजित करने वाला हो।
12. प्रश्न के रुपों मे भिन्नता हो।

**प्रश्न की आवश्यकता (उ़द्धेश्य)–**

1. छात्रों के पूर्व ज्ञान का परिचय प्राप्त करना ।
2. नवीन ज्ञान से पूर्व ज्ञान को cordate कर छोत्रों को परिचित।
3. छात्र पाठ को ठीक प्रकार से समझ रहे है या नही यह भी पता लगाना है।
4. छात्रों की शंकाओं एवं कठिनाइओं का ज्ञान करना।
5. छात्रों को कक्षा में क्रियाशील रखना और उसके ध्यान को पाठ की ओर केन्द्रित करना।
6. यह पता लगाना कि अर्जित किये गये ज्ञान को क्या छात्र ठीक प्रकार से अभिव्यक्त कर सकते है या नहीं।
7. पढे गये पाठ की पुनरावृति करना। जिससे प्राप्त ज्ञान छात्र के मस्तिस्क में स्थायी रह सके।
8. छात्रों की रुचियों का पता लगाना।
9. पाठ के महत्वपूर्ण तथ्यों की ओर संकेत करना।
10. छात्रों की आत्म प्रकाशन शक्तियों का विकास करना
11. बालको के मस्तिष्क को क्रियाशील बनाये रखना।
12. कक्षा में अनुशासन बनाये रखना।
13. तुलनात्मक अध्ययन में सहायता करना।
14. दिये जा रहे ज्ञान को आगे बढाना अथवा पाठ का विकास करना।

दोषपूर्ण प्रश्न– निम्नलिखित प्रकार के प्रश्न दोषपूर्ण होते है–

1. अपूर्ण प्रश्न
2. उत्तर सूचक प्रश्न या सांकेतिक प्रश्न
3. द्विविधासूचक प्रश्न या हॉ और नही वाले प्रश्न
4. पुष्टिकारक या स्वीकरण प्रश्न
5. रिक्त स्थान पूरक प्रश्न
6. एक प्रश्न में अनेक प्रश्न होना
7. प्रश्नों में भाषा की अस्पष्टता
8. प्रतिध्वनि प्रश्न

प्रश्नों का वर्गीकरण

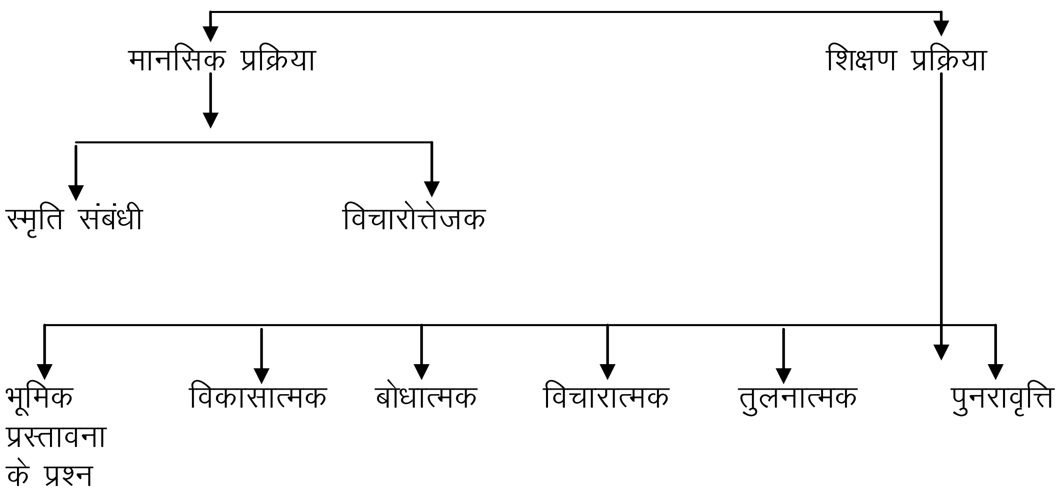

**प्रश्नों के प्रकार**

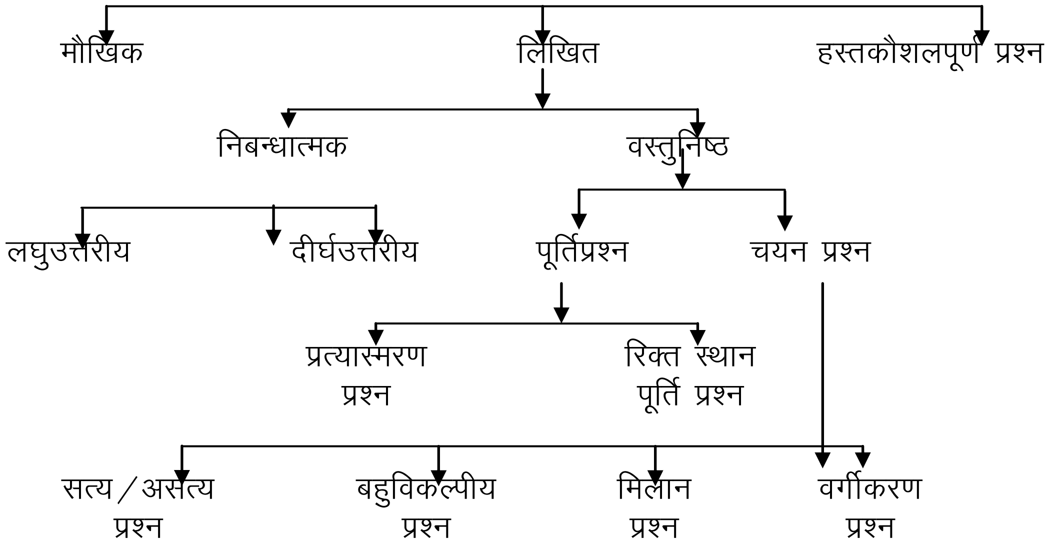


**वस्तुनिष्ठ परीक्षण के प्रकार**

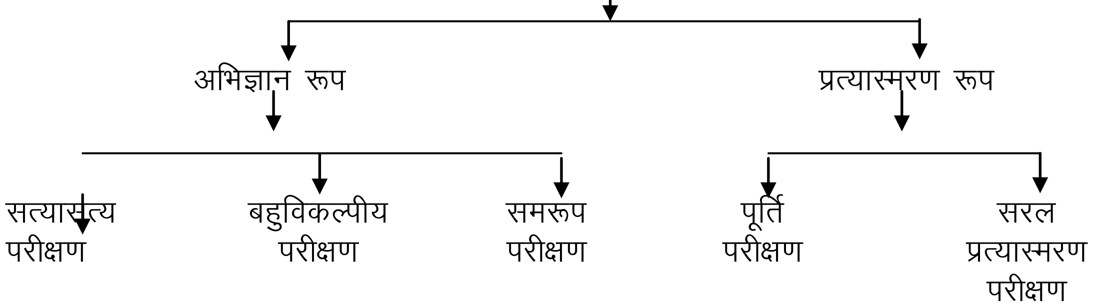

## संस्कृत कि विभिन्न विधाओं का मूल्यांकन

आजकल छात्रों के मन मस्तिष्क में संस्कृत की दुरूह एवं भयावह प्रतिमूर्ति विकसित होती जाती है। फलस्वरूप छात्र संस्कृत के निकट आने की अपेक्षा दूर होते जा रहे हैं। इसका एक प्रमुख कारण संस्कृत की दोषपूर्ण शिक्षण पद्धति है, जिससे संस्कृत भाषा की मौलिकता, सरलता, सरसता, सहजता एवं समुचित बोधगम्यता का हास हो जाता है। संस्कृत भाषा में उपर्युक्त गुण तभी विद्यमान रह सकते हैं जब भाषा के चारों अंगों सुनना, बोलना, पढ़ना, सिखना को ध्यान में रखकर शिक्षण–पद्धति विकसित की जाये। संस्कृत की परम्परागत प्रचलित शिक्षण पद्धति के माध्यम से भाषा के दो अंगों का विकास (संस्कृत भाषा में लेखन तथा लिखित का अवबोध) कुछ सीमा तक हो जाता है किन्तु भाषा के अन्य दो अंगों (बोलना तथा बोली हुई बात को समझना) का विकास कदाचित ही होता है। इस दृष्टि से संस्कृत पाठ्यवस्तु को सरल, सरस, सहज एवं बोधगम्य बनाना एवं सामान्य व्यवहार में आने वाले शब्दों का पाठ्यवस्तु में समावेश करना नितान्त आवश्यक। इस प्रकार छात्र संस्कृत विषय के सन्निकट आयेंगे तथा संस्कृत के प्रति उनकी रुचि बढ़ेगी।

संस्कृत–साहित्य की विभिन्न विधाओं एवं मूल्यांकन पर आगे के अध्यायों में विचार किया जायगा। इस अध्याय में हम देखेंगे कि संस्कृत भाषा की शिक्षा किन विधियों द्वारा दी जाय। इस स्थल पर हम विधाओं की पृथक् चर्चा न करके सम्पूर्ण संस्कृत भाषा की दृष्टि से पद्धतियों पर विचार करेंगे। संस्कृत–शिक्षण–पद्धतियों का हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन करेंगे–

(1) व्याकरण–पद्धति, (2) विश्लेषणात्मक पद्धति (3) व्याख्या–पद्धति, (4) अनुवाद– पद्धति, (5) प्रत्यक्ष पद्धति, (6) हरबार्टीय पञ्चपदी (7) मूल्यांकन का दृष्टिकोण, (8) भण्डारकर विधि, (9) पाठ्य–पुस्तक पद्धति, (10) निर्बाध पद्धति, (11) प्राचीन एवं नवीन पद्धतियों का समन्वय।

### व्याकरण पद्धति

मातृभाषा के अतिरिक्त किसी भी भाषा को सीखने की एक विधि यह है कि हम उस भाषा के व्याकरण को अच्छी तरह जानें और व्याकरण सीखकर उस भाषा पर अधिकार प्राप्त करें। संस्कृत भाषा का भी इस दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। संस्कृत पाठशालाओं में यह पद्धति सर्वप्रचलित विधि के रूप में दिखाई पड़ती है। संस्कृत भाषा का व्याकरण बड़ा जटिल

किन्तु सुनिश्चित है। वेदों के अध्ययन के लिए प्राचीन समय में व्याकरण पर बल दिया जाता था। शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और कल्प तथा इन छः वेदांगों के अध्ययन पर विशेष बल था।

आज भी पाठशालाओं में व्याकरण को महत्त्व दिया जाता है और व्याकरणाचार्य को अत्यधिक सम्मान दिया जाता है। शताब्दियों से यह प्रथा चली आ रही है कि संस्कृत का अध्ययन करने का अर्थ है, संस्कृत के व्याकरण का कुछ ज्ञान प्राप्त करके आगे बढ़ना। छात्र आज भी जब पाठशाला में जाता है तो उसे सर्वप्रथम 'लघु सिद्धान्त कौमुदी' का अध्ययन कराया जाता है।

व्याकरण–पद्धति के अध्ययन करने की आजकल पर्याप्त आलोचना की जाती है। इस पद्धति में प्रायः निम्नलिखित दोष बताये जाते हैं–

1. यह विधि नीरस होती है।
2. यह विधि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल नहीं है क्योंकि इसमें छात्र की मानसिक क्षमता एवं रुचि का व्याकरण–पद्धति में ध्यान नहीं रखा जाता।
3. यह विधि भाषा – विज्ञान के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। इसमें वर्णों को इकाई मानकर चला जाता है और वाक्य रचना का अभ्यास नहीं हो पाता।
4. यह विधि छात्रों को संस्कृत के प्रयोग का व्यावहारिक ज्ञान नहीं देती। शास्त्रीय व्याकरण में पटु होते हुए भी वैयाकरण संस्कृत के व्यावहारिक प्रयोगों पर अधिक ध्यान नहीं देते।
5. इस विधि में भाषा के अन्य पक्ष उपेक्षित रहते हैं।

उपर्युक्त दुर्गुणों की ओर आजकल के मनोविज्ञानवेत्ता हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं, किन्तु व्याकरण–पद्धति के गुणों की ओर से भी हम आँख बन्द नहीं कर सकते। इस पद्धति की अच्छाइयों को हम संक्षेप में नीचे अंकित कर रहे हैं–

1. संस्कृत–व्याकरण इतना जटिल है कि उसका ज्ञान बिना व्याकरण–विधि के भली प्रकार हो ही नहीं सकता।
2. व्याकरण – विधि से छात्र संस्कृत भाषा की बारीकियों को समझ पाते है।

3. व्याकरण – विधि को अव्यावहारिक कहना भूल है क्योंकि इस विधि से छात्र व्याकरण के नियमों को जानकर उनका प्रयोग करते हैं।

4. इस विधि से अध्ययन करने वाले छात्र भाषागत अशुद्धियाँ कम करते हैं। ये चाहे कम लिखें और कम बोलें, किन्तु जो भी लिखते या पढ़ते हैं, वह प्रायः शुद्ध होता है।

5. वर्तमान समय में संस्कृत एक अल्प प्रचलित भाषा है। ऐसी भाषा के उच्च व विशिष्ट ज्ञान के लिए व्याकरण–पद्धति सर्वथा उपयुक्त है।

उपर्युक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्याकरण–पद्धति का अपना महत्त्व है। यद्यपि सभी छात्रों के लिए इस विधि का समर्थन नहीं किया जा सकता, किन्तु जो इस विधि से अध्ययन करना चाहें, उनके मार्ग में बाधा भी नहीं आनी चाहिए। इसके विपरीत पाठशालाओं को उचित रूप से प्रोत्साहन देना चाहिए, ताकि वहाँ पर छात्र अपने गहन अध्ययन द्वारा संस्कृत भाषा की ओजस्विता को बनाये रखें और सांस्कृतिक परम्परा सुरक्षित रहे। इस पद्धति का अपना एक अनोखा स्थान है और यदि इस पद्धति में आधुनिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के अनुसार कुछ आवश्यक (अनावश्यक नहीं) परिवर्तन कर दिये जाएँ तो यह पद्धति बहुत से छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकती है। व्याकरण–शिक्षण पर आगे एक पृथक् अध्याय में विस्तार से विचार किया जायगा।

**विश्लेषणात्मक पद्धति**

विश्लेषणात्मक पद्धति वह है जिसमें अध्यापक जब कक्षा में शिक्षण करता है तो पहले वह पूरे पाठ की वस्तु से प्रारम्भ करता है और बाद में उस पाठ के विभिन्न अंशों का शिक्षण करता है। सम्पूर्ण विषय सामग्री से चलकर विभिन्न भागों का विश्लेषण या विवेचन किया जाता है। यदि कोई पाठ कहानी का है तो सम्पूर्ण कहानी पहले सुनाकर बाद में कहानी के महत्त्वपूर्ण अंशों का अध्ययन होगा। यदि महाभारत की कथा पढ़ानी है या रामायण की कथा सुनानी है तो यह विधि कारगर सिद्ध होगी।

इस पद्धति के पक्ष में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं–

1. यह पद्धति श्सम्पूर्ण से अंश की ओर चलने का परामर्श देकर मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का आश्रय लेती है।

2. इसमें साधारण एवं सरल बातों के आधार पर विशेष असाधारण एवं कठिन बातों का ज्ञान कराया जाता है।

3. इस पद्धति में बालक रुचि लेते हैं। अतः उनका सीखना आनन्दमय होता है।

इस पद्धति के विरोध में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं–

1. यह पद्धति वहीं पर प्रयुक्त की जा सकती है जहाँ पर विषय को कई खण्डों में बाँटा जा सके। अतः कथा–कहानियों के अतिरिक्त अन्य विषयों में यह इतनी लाभदायक नहीं सिद्ध होती।

2. केवल विश्लेषण से विषय का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। विश्लेषण और संश्लेषण दोनों होने चाहिए।

3. यह पद्धति मूलभूत चरण, प्रिमेरेटरी स्टेज प्रारम्भिक स्तर पर अधिक तथा मध्य स्तर पर सामान्य रूप से उपयोगी हो सकती है, किन्तु उच्च स्तर पर अनुपयोगी ही है।

4. संस्कृत भाषा के विभिन्न पक्षों का ज्ञान केवल विश्लेषण पद्धति से नहीं हो सकता। संस्कृत में स्थान–स्थान पर व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है, अतः अब हम तीसरी पद्धति व्याख्या पर आते हैं।

**व्याख्या–पद्धति**

व्याख्या–पद्धति में शिक्षक एक–एक शब्द को लेकर उसका अर्थ स्पष्ट करता है। पद का अर्थ बताते समय वह समास–विग्रह, सन्धि–विच्छेद, व्युत्पत्ति आदि बताते हुए सम्पूर्ण वाक्य, अनुच्छेद एवं पाठ का अर्थ बताता है। तत्पश्चात् पाठ का सारांश भावार्थ आदि भी स्पष्ट किया जाता है। लेखक या कवि की शैली आदि का भी परिचय कराया जाता है। इस विधि को व्याख्यान विधि भी कहा जा सकता है। व्याख्या–पद्धति को समझने के लिए व्याख्यान सम्बन्धी निम्नलिखित श्लोक ध्यान देने योग्य है–

पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।
आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्यानं षड्विधं स्मृतम्।।

अर्थात् व्याख्यान के निम्नलिखित छः ढंग हैं–

(1) पदच्छेद, (2) पदार्थोक्ति, (3) विग्रह, (4) वाक्य–योजना, (5) आक्षेप, (6) समाधान। उपर्युक्त श्लोक से व्याख्या पद्धति पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। व्याख्या–पद्धति का प्रचलन प्राचीन काल में तो था ही, आज भी कुछ अच्छे शिक्षक इस पद्धति का आश्रय लेते हैं–

व्याख्यान–पद्धति के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित बातें कही जाती हैं–

1. व्याख्या से शब्दों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है और छात्र नये–नये शब्दों का अर्थ जानकर उनका प्रयोग सीख जाते हैं। इस प्रकार छात्रों के शब्द भण्डार की वृद्धि होती है।
2. विषय–ज्ञान की दृष्टि से भी व्याख्या–विधि अच्छी होती है। इससे सामग्री पर अच्छा प्रकाश पड़ जाता है और छात्र विषय–वस्तु को ठीक समझ लेता है।
3. इस पद्धति द्वारा लेखक या कवि की शैली तथा भाषा सम्बन्धी सौष्ठव का परिचय मिल जाता है।
4. यदि अध्यापक ने पांडित्यपूर्ण तथा सरस व्याख्या की है तो छात्रों की स्मृति में व्याख्या अधिक दिन तक टिक सकती है।

इस पद्धति के विरोध में प्रायः निम्नलिखित बातें कही जाती हैं–

1. इस पद्धति में अध्यापक तो सक्रिय रहता है, किन्तु छात्र निष्क्रिय श्रोता के रूप में बैठे रहते हैं।
2. इस पद्धति में छात्र रुचि नहीं लेते।
3. इस पद्धति में अध्यापक मनोवैज्ञानिक क्रम के विपरीत तार्किक क्रम पर ही अधिक ध्यान देता है।
4. इस पद्धति के द्वारा छात्रों में स्वाध्याय एवं स्वानुसन्धान की आदत नहीं पड़ती। उपर्युक्त गुणावगुणों पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि व्याख्या–विधि अपने आप में सर्वोत्तम विधि नहीं है, किन्तु यथावसर इसका प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करना चाहिए।

### अनुवाद–पद्धति

बालक मातृभाषा में अपने विचारों को अधिक सरलता, सुगमता एवं स्पष्टता से व्यक्त कर सकता है। मातृभाषा के माध्यम से विषय को ग्रहण करना भी सरल होता है। इसी आधार पर बालक के मन में जो कुछ भी आये, वह मातृभाषा के माध्यम के रूप में ही आये तो

अच्छा है और इसमें अनुवाद–पद्धति महती भूमिका निभा सकता है। संस्कृत का अध्ययन द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में होता है। अतः संस्कृत को यदि मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाया जाय तो अधिक अच्छा है। यहाँ पर अनुवाद–पद्धति का तात्पर्य यह है कि संस्कृत भाषा को मातृभाषा में अनूदित करके पढ़ाया जाय।

इस पद्धति के पक्ष में प्रायः निम्नलिखित बातें कही जाती हैं–

(1) इस पद्धति द्वारा छात्रों को विषय की सरलता एवं सुगमता को ज्ञान हो जाता है, क्योंकि मातृभाषा के माध्यम से बोध सरल होता है।

(2) इस पद्धति द्वारा मातृभाषा तथा संस्कृत भाषा के शब्दों, मुहावरों, लोकोक्तियों एवं विभिन्न शैलियों का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। इससे छात्र के शब्द भण्डार की वृद्धि होती है।

(3) इस पद्धति से ज्ञात से अज्ञात, श्सरल से कठिनश आदि सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाता है।

(4) अनुवाद द्वारा वाक्य रचना ठीक से समझी जा सकती है।

(5) इस पद्धति द्वारा अनुमान, तुलना तथा निरीक्षण का अभ्यास डाला जाता है।

इस पद्धति के विपक्ष में निम्नलिखित बातें कही जाती हैं–

(1) भाषा अभ्यासजन्य है। यदि सदा अनुवाद होता रहेगा तो संस्कृत भाषा को लिखने–पढने की योग्यता का विकास करना ही असम्भव हो जायेगा।

(2) अनुवाद में प्रायः मक्षिका स्थाने मक्षिका की प्रवृत्ति रहती है जिससे भाषागत सौन्दर्य नष्ट हो जाता है।

(3) किसी भी भाषा के मूलभाव की पूर्ण रक्षा करना इस पद्धति द्वारा कठिन है।

(4) प्रत्येक भाषा का अपना सन्देश होता है जिसे वही भाषा वहन कर सकती है।

(5) मूल प्रकृति के रूप में है, तो अनुवाद प्रतिकृति के रूप में प्रतिकृति से प्रकृति सदा श्रेष्ठ होती है।

किसी भी भाषा को सिखाने के लिए यह आवश्यक है कि उसी प्रकार का वातावरण हो और छात्र उस भाषा को लिखने, पढ़ने, बोलने तथा सुनने का अभ्यास करे। यदि कहीं पर अत्यधिक आवश्यक हो तो मातृभाषा का प्रयोग कर लिया जाय, नहीं तो संस्कृत भाषा का ही प्रयोग किया जाय। इसे प्रत्यक्ष विधि कहते हैं जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

**प्रत्यक्ष पद्धति**

प्रत्यक्ष पद्धति में पाठ्य सामग्री का मातृभाषा में अनुवाद नहीं किया जाता। किसी भी भाषा को सीखने के लिए उस भाषा में लिखने, बोलने, पढ़ने तथा सुनने का अभ्यास करना आवश्यक है। कक्षा का वातावरण ही ऐसा हो कि छात्र संस्कृत भाषा को लिखने–पढ़ने में रुचि लें। आदेश संस्कृत भाषा में ही दिये जायें। पारस्परिक वार्तालाप भी यथासम्भव संस्कृत में ही हो। अध्यापन भी संस्कृत भाषा में ही हो। संस्कृत में ही प्रश्न किये जायें और यथासम्भव संस्कृत में ही उत्तरों की माँग की जाय। इससे यह लाभ होगा कि छात्रों को संस्कृत लिखने–पढ़ने का अभ्यास ही नहीं होगा, प्रत्युत उनमें संस्कृत को समझने और बोलने की सहज प्रवृत्ति भी उत्पन्न होगी।

प्रत्यक्ष पद्धति की निम्नलिखित बिशेषताएं हैं–

(1) यह पद्धति भाषा – शिक्षण के मूल सिद्धान्तों के अनुकूल है। किसी भी भाषा को। उसी भाषा के माध्यम के द्वारा सीखा जा सकता है, न कि अन्य भाषा के माध्यम से।

(2) इस पद्धति में संस्कृत भाषा को सुनने तथा बोलने का पर्याप्त अवसर प्रदान किया गया है।

(3) प्रत्येक भाषा की अपनी प्रकृति है। अनुवाद में भाषा की प्रकृति प्रायः उपेक्षित रह जाती है।

(4) प्रत्यक्ष विधि में जिस प्रकार भाषा समाज में व्यवहृत होती है, उसी प्रकार से कक्षा में भी प्रयुक्त होती है।

(5) प्रत्यक्ष विधि से छात्रों की रुचि एवं योग्यता का ध्यान रखा जाता है।

इस पद्धति के विपक्ष में निम्नलिखित बातें कही जा सकती हैं–

(1) यह पद्धति तब सफल हो सकती है, जबकि छात्रों को उस भाषा का कुछ प्रारम्भिक ज्ञान हो। छात्र प्रारम्भ में संस्कृत भाषा में विचारों की अभिव्यक्ति ही नहीं कर पायेंगे।

(2) जहाँ तक संस्कृत भाषा का सम्बन्ध है, इसे बोलना तथा लिखना तभी सम्भव है, जबकि व्याकरण का प्रारम्भिक ज्ञान हो जाय।

(3) कक्षा में कृत्रिम वातावरण बनाकर प्रत्यक्ष विधि के अनुकूल वातावरण रचा जा सकता है, किन्तु परिवार एवं समुदाय में छात्र मातृभाषा का ही सर्वाधिक प्रयोग करता है, अतः यह कृत्रिमता अधिक आकर्षक नहीं है।

(4) अनुवाद– प्रणाली से छात्र सरलता से संस्कृत सीख जायेंगे और संस्कृत की प्रकृति से भी परिचित होने में बाधा नहीं पड़ेगी।

(5) प्रत्यक्ष पद्धति द्वारा केवल बुद्धिमान छात्र ही लाभान्वित होते हैं; सामान्य छात्र नहीं।

(5) प्रत्यक्ष पद्धति से समय अधिक चाहिए। उसी तथ्य को अनुवाद–पद्धति द्वारा कम समय में समझाया जा सकता है।

(6) प्रत्यक्ष पद्धति से पढ़ने के लिए वर्तमान अध्यापकों को प्रशिक्षण देना होगा, जो असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

(7) वाक्य रचना (Structural Approach) के अभ्यास द्वारा केवल कुछ ही वाक्य–रचना–साँचों का ज्ञान कराया जा सकता है। संस्कृत भाषा में सामान्य एवं अपवाद नियम इतने अधिक हैं कि सभी में प्रत्यक्ष विधि अपनायी ही नहीं जा सकती। प्रत्यक्ष विधि के समर्थक प्रायः वाक्य रचना प्रणाली का समर्थन करते हैं।

प्रत्यक्ष पद्धति का प्रयोग कुछ दिनों पूर्व अंग्रेजी को पढ़ाने के लिए खूब अपनाया गया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि अंग्रेजी भाषा को पढ़ाने के लिए भी प्रत्यक्ष पद्धति असफल सिद्ध हुई है। अतः संस्कृत भाषा को पढ़ाने के लिए केवल प्रत्यक्ष विधि का आश्रय लेना ठीक नहीं है। हाँ, प्रत्यक्ष विधि का व्याकरण एवं अनुवाद विधियों का समन्वित रूप ग्रहण करने में हानि नहीं है।

**हरबार्टीय पञ्चपदी**

प्रसिद्ध दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक हरबार्ट के सिद्धान्तों के आधार पर उसके शिष्यों ने हरबार्टीय पंचपदी का विकास किया है। इन पाँचों पदों द्वारा पाठ के शिक्षण का विधान किया गया है। ये पाँचों पद निम्नलिखित हैं–

(1) प्रस्तावना, (2) विषयोपस्थापन, (3) तुलना, (4) सामान्यीकरण (5) प्रयोग।

**(1) प्रस्तावना** – प्रस्तावना में दो–एक प्रश्नों द्वारा कवि या लेखक के विषय में वार्तालाप द्वारा प्रस्तुत पाठ के लिए छात्रों को तैयार किया जाता है। वर्तमान पाठ के लिए तैयारी

बड़ी महत्त्वपूर्ण है। यदि प्रस्तावना ठीक नहीं हुई तो पाठ की सफलता भी कठिनता से मिलेगी। प्रस्तावना पिछले पाठ की पुनरावृत्ति द्वारा भी हो सकती है। प्रसंग का वर्णन करके भी प्रस्तावना की जा सकती है। आजकल कुछ प्रश्नों द्वारा प्रस्तावना अच्छी समझी जाती है।

(2) **विषयोपस्थापन** – मुख्य भाव के अनुसार पाठ को दो–तीन अन्वितियों में बाँट लिया जाता है। प्रत्येक अन्विति को प्रस्तावना के पश्चात् छात्रों के समक्ष उपस्थापित किया जाता है। उपस्थापन में ही शिक्षकों द्वारा आदर्श वाचन, छात्रों द्वारा अनुकरण वाचन, सन्धि– समास, समास विग्रह, दण्डान्वय, खण्डान्वय एवं भाव परीक्षा के प्रश्न आते हैं।

(3) **तुलना** – तुलना में वर्तमान पाठ की तुलना बालकों के संचित ज्ञान से की जाती है। भाषा शिक्षण में काठिन्य–निवारण, विस्तृत व्याख्या इसी पद के अन्तर्गत है।

(4) **सामान्यीकरण** – व्याकरण के पाठों में इसका विशेष उपयोग है। संचित ज्ञान की प्रस्तुत पाठ से तुलना करने पर छात्र स्वयं कुछ सामान्य सिद्धान्तों का दर्शन करते हैं। इन सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण इस पद में किया जाता है। भाषा शिक्षण में इस स्तर पर पुनरावृत्ति के प्रश्न आते हैं। कविता–शिक्षण में समान भाव की कविताएँ दी जा सकती हैं।

(5) **प्रयोग** – प्रस्तुत पाठ की उपस्थापना एवं तुलना के बाद छात्र जब सामान्य सिद्धान्त का निर्धारण कर लेते हैं, तब बाद में यह भी आवश्यक हो जाता है कि छात्र नवार्जित ज्ञान को व्यवहृत या प्रस्तुत करें। यह प्रयोग की अवस्था है। इस पद में भाषा के पाठों में छात्रों को कुछ अभ्यास–कार्य दिया जाता है। कक्षा कार्य एवं गृह कार्य भी प्रयोग के लिए ही दिये जाते हैं।

हरबार्टीय पंचपदी मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर आधारित है। इनमें वही क्रम अपनाया गया है जो विचारों के ज्ञान में अपनाया जाता है। इस पद्धति की आलोचना भी की जाती है। आलोचना की मुख्य बात यह है कि यह पद्धति सभी प्रकार के विषयों में प्रयुक्त नहीं हो सकती है। विज्ञान को पढ़ाने में यह असफल ही सिद्ध हुई है। भाषा– शिक्षण में भी सभी प्रकार के पाठों में इसका प्रयोग नहीं हो पाता। फिर भी यह पद्धति आवश्यक संशोधन के साथ आज भी काम में लायी जा सकती है।

**मूल्यांकन का दृष्टिकोण**

प्रशिक्षण महाविद्यालयों में बहुत दिनों तक हरबार्टीय विधि का बोलबाला रहा है। उसके आधार पर पाठ—योजनाएँ बनायी जाती रही हैं। अब श्मूल्यांकन प्रविधिश यह शब्द प्रायः सुनने को मिलता है। इसका अभिप्राय संक्षेप में दिया जा रहा है।

मूल्यांकन प्रविधि की दृष्टि से हम शिक्षण से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु का मूल्य अर्थात् महत्त्व जानना चाहते हैं। यह कार्य उद्देश्य की दृष्टि से होता है, जो वस्तु उद्देश्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं होती, उसका इस प्रविधि में कोई स्थान नहीं होता। इस दृष्टि से इस विधि में पाठ्य वस्तु, पाठन—विधि, परीक्षा—विधि आदि प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन किया जाता है और प्रत्येक वस्तु को उसी रूप में रखा जाता है, जिस रूप में वह उद्देश्य की दृष्टि से उचित होती है।

इस प्रविधि के आधार पर पाठ योजना बनाते समय सबसे पहले पाठ का उद्देश्य निश्चित किया जाता है। उसके बाद यह विचार किया जाता है कि जिस व्यक्ति ने उक्त उद्देश्य को प्राप्त कर लिया है, उसके व्यवहार में पहले की अपेक्षा क्या— क्या संशोधन हो जाते हैं। इन संशोधित व्यवहारों को व्यवहार रूप (Behaviour Patterns) कहते हैं। व्यवहार—रूपों का निश्चय कर लेने के पश्चात् यह देखा जाता है कि पाठ्य—वस्तु के किस अंश के अध्यापन के माध्यम से वे व्यवहार रूप छात्र के व्यक्तित्व से उत्पन्न करने होंगे। साथ ही यह भी विचार किया जाता है कि किन—किन क्रियाओं का सम्पादन करके तथा छात्रों से सम्पादन कराके अध्यापक उस पाठ्य वस्तु को छात्रों को हृदयंगम करा सकेगा और उन क्रियाओं में से कौन—सी कक्षा में चलेगी और कौन—सी कक्षा के बाहर। इन क्रियाओं को शिक्षण युक्तियाँ तथा प्रविधियाँ भी कहा जाता है। अध्यापन—युक्तियों का विनिश्चय करके यह सोचा जाता है कि परीक्षा की वे युक्तियाँ क्या—क्या होंगी, जिनसे ज्ञात हो जाय कि छात्र में अभीष्ट व्यवहार रूप उत्पन्न हो गये हैं। यदि ये युक्तियाँ प्रमाणित कर दें कि अभीष्ट व्यवहार रूप छात्र में उत्पन्न हो गये हैं, तो माना जा सकेगा कि उनसे सम्बद्ध उद्देश्य भी प्राप्त हो गया है।

इस प्रसंग में एक प्रश्न उठता है कि पाठ्य वस्तु के अध्यापन के लिए सही युक्ति अथवा क्रिया कौन—सी है और इसका निश्चय किस प्रकार किया जा सकता है। यह प्रश्न स्वाभाविक

एवं महत्त्वपूर्ण है परन्तु साथ ही अत्यधिक सरल भी है। इसका सीधा उत्तर यह है कि जो–जो क्रियाएँ कराके व्यवहार रूप की परीक्षा हो सकती है, उन्हीं – उन्हीं को कराके अध्ययन भी किया जा सकता है। साइकिल चलाने की योग्यता की परीक्षा जिस–जिस प्रकार साइकिल चलवाकर ली जा सकती है, उसी उसी प्रकार साइकिल चलवाकर साइकिल चलाना सिखाया जाता है।

प्राचीन समय में समस्त शिक्षा का माध्यम संस्कृत भाषा थी किन्तु आज विद्यालयों में संस्कृत को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है, परिणामतः अब तक विवेचित विधियों के अतिरिक्त तीन अन्य नवीन शिक्षण पद्धतियों–भण्डारकर विधि, पाठ्य–पुस्तक प्रणाली तथा निर्बाध प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। इन तीनों की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है। जैसे

**भण्डारकर विधि**

पाठशाला पद्धति की त्रुटियों में सुधार करने के लिए भण्डारकर विधि को गोपालकृष्ण भण्डारकर ने प्रस्तुत किया। इस पद्धति की सर्वप्रथम विशेषता यह थी कि संस्कृत को व्याकरण तथा अनुवाद के माध्यम से पढ़ाया जाता था। इस पद्धति में व्याकरण के दुरूह नियमों का बहिष्कार किया गया तथा रटने की प्रणाली का भी बहिष्कार किया गया। इसमें शब्दावली को वर्गीकृत करके सरल संस्कृत भाषा का एक रूप प्रस्तुत किया गया। संस्कृत भाषा के पारखी भण्डारकर महोदय ने व्याकरण तथा अनुवाद के अभ्यास द्वारा संस्कृत भाषा का ज्ञान देने का प्रयास किया। भण्डारकर महोदय का दावा है कि व्याकरण तथा अनुवाद के अभ्यास द्वारा संस्कृत साहित्य में छात्रों को प्रविष्ट कराया जा सकता है। व्याकरण तथा अनुवाद पद्धतियों की इस अध्याय में पहले समीक्षा की जा चुकी है। अतः इनकी सीमाओं का वर्णन यहाँ नहीं किया जा रहा है।

**पाठ्य–पुस्तक पद्धति**

व्याकरण–अनुवाद विधि की त्रुटियों को दूर करके शिक्षण विधि का एक परिष्कृत रूप पाठ्य–पुस्तक पद्धति में दिखाई दिया।

1. इस विधि की सर्वप्रथम विशेषता यह थी कि संस्कृत भाषा में वाचन पर बल दिया गया। विषय सामग्री बालकों के भौतिक एवं सामाजिक वातावरण से ली गई।

2. प्रारम्भिक अवस्था में वर्गीकृत शब्दावली में से वही शब्द सिखाये गये जो उनकी मातृभाषा तथा संस्कृत भाषा दोनों में समान रूप में थे। उन शब्दों को साधारण क्रिया के रूप में सिखाया गया यथा– पठामि, लिखामि आदि। इसके उपरान्त सरल वाक्यों द्वारा वाचन पर जोर दिया गया।
3. इस पद्धति द्वारा मौखिक अथवा सस्वर वाचन में छात्र निपुण हो जाते थे, जो कि लिखित भाषा का आधार है।
4. छात्रों की उच्चारण सम्बन्धी त्रुटियों को शुद्ध किया जाता था, तत्पश्चात् के अक्षर विन्यास में अशुद्धियाँ भी कम करते थे।
5. वाचन द्वारा छात्र कक्षा में सक्रिय रहते थे।
6. कठिन शब्दावली की उनकी मातृभाषा में व्याख्या की जाती थी जिससे छात्रों के लिये संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करना सरल हो गया।
7. स्कूल छोड़ने के उपरान्त भी इस विधि का छात्र लाभ उठा सकते थे। वह सहायक पुस्तकों एवं टीकाओं द्वारा संस्कृत भाषा को समझकर अर्थ ग्रहण करने में समर्थ हो जाते हैं।

**निर्बाध पद्धति**

पाठ्य–पुस्तक विधि लाभदायक होने पर भी पूर्ण न थी अतः इसको निर्बाध विधि द्वारा पूर्णता प्रदान करने का यत्न किया। इस विधि की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. इस विधि में छात्रों को बिना किसी बाधा के संस्कृत का ज्ञान दिया जाता था। शब्द और अर्थ में सीधा सम्पर्क स्थापित किया जाता था।
2. मातृभाषा का प्रयोग वर्जित था। अतः छात्रों को संस्कृत भाषा सीखना सरल था। छात्र संस्कृत में ही सोचते थे। इस प्रकार वे मातृभाषा का प्रयोग किये बिना सुगमता एवं शीघ्रता से संस्कृत भाषा सीख लेते थे।
3. यह संस्कृत सीखने की रोचक विधि है। प्रारम्भ में छात्रों को वस्तु दिखाकर, प्रश्न पूछकर या संकेत द्वारा उस वस्तु का ज्ञान कराया जाता था। अध्यापक उस शब्द को संस्कृत में बताता था। छात्र उसका अनुसरण करते थे और अभ्यास द्वारा शब्द सीख जाते थे। इस प्रकार संस्कृत सीखना सरल था।

4. संस्कृत भाषा को उसी प्रकार सहज रूप में सीखते थे, जैसे–मातृभाषा सीखते हैं। छात्रों को संस्कृतमय वातावरण द्वारा भाषा–ज्ञान दिया जाता था। अतः प्रारम्भ में ही बच्चा संस्कृत की इकाइयों को ग्रहण करता था तथा उत्तरावस्था में इस आधार पर उसकी शब्दावली में अभिवृद्धि होती थी।

निर्बाध विधि एक प्रकार से प्रत्यक्ष विधि है अतः उसके गुण–दोषों की विस्तृत समीक्षा यहाँ पर अभीष्ट नहीं है। इस प्रकार से संस्कृत को जब एक विषय के रूप में पढ़ाया जाने लगा तो संस्कृत–शिक्षण की नवीन पद्धतियों का प्रादुर्भाव हुआ, किन्तु हम संस्कृत शिक्षण की प्राचीन पद्धति को भी व्यर्थ एवं निरुपयोगी नहीं कह सकते। जो गुण प्राचीन पद्धति में विद्यमान हैं वह नवीन विधियों में नहीं हैं। अतः प्राचीन पद्धति में कुछ आवश्यक सुधार करके उन्हें उपयोगी बनाया जा सकता है, साथ ही नवीन पद्धतियों को भी आवश्यकता पड़ने पर अपनाकर संस्कृत शिक्षण को रोचक एवं आकर्षण बनाया जा सकता है।

**प्राचीन एवं नवीन पद्धतियों का समन्वय**

भारत का प्राचीन काल संस्कृत भाषा का गौरव काल रहा है। उस समय संस्कृत भाषा की अत्यधिक उन्नति हुई। यह उन्नति शिक्षकों एवं छात्रों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हुई। उस समय अध्ययन का प्रारम्भ उपनयन संस्कार के बाद होता था। छात्र आचार्य के पास जाता था तो आचार्य उसे गायत्री मन्त्र का उपदेश देकर विद्याध्ययन कराता था। विद्यार्थी नियम से उठते थे और प्रतिदिन अध्ययन करते थे । जिसे इकाई–योजना (Unit plan) या अभिक्रमित अधिगम (Programme Learning) कहा जाता है, उसका व्यवहृत रूप उस समय देखा जा सकता था। अध्यापक छात्र पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देता था। जहाँ पर नालन्दा विश्वविद्यालय के बडे–बडे कक्ष थे, वहाँ पर झोपड़ियों में भी विश्वविद्यालय स्थापित थे। व्यक्तिगत शिक्षा पर विशेष बल था। प्राचीन प्रणाली में स्मृति पर अधिक जोर था। आजकल छात्र की रुचि का विशेष ध्यान रखा जाता है। दोनों प्रणालियों के समन्वय की आवश्यकता है। संस्कृत भाषा का ज्ञान तब तक अपूर्ण रहेगा जब तक कि छात्र स्मरण करने में पटु न हों। यदि स्मरण करने वाली सामग्री को अध्यापक अपनी सरल शिक्षण विधि द्वारा रोचक बना दे तो छात्र को याद करने में भी सरलता होगी।

तर्क–संग्रह में विचारों को ग्रहण करने का सुन्दर विवेचन किया गया है। उसमें निम्नलिखित सोपानों का वर्णन किया गया है–

(1) प्रतिज्ञा (Proposition), (2) हेतु (Cause), (3) उदाहरण (Example), (4) तुलना (Comparison), (5) निगमन (Conclusion)।

किसी भी विचार को ग्रहण करने में इन पाँच सोपानों का प्रयोग होता था। इन पाँच सोपानों को ध्यान से देखने पर पता चलता है कि ये हरबार्टीय पंचपदी से भी अधिक वैज्ञानिक सोपान हैं

हरबार्टीय पंचपदी में हम प्राचीनता एवं नवीनता का समन्वय पाते हैं। विचारों को समझने में जिन सोपानों का प्राचीन भारतीय आचार्यों ने वर्णन किया है, उसी को हेर–फेर के साथ हरबार्टीय पंचपदी में भी कहा गया है। अतः यह प्रश्न निरर्थक–सा हो जाता है कि संस्कृत शिक्षा में प्राचीन पद्धति का प्रयोग किया जाय या नवीन का।

आजकल प्रश्नोत्तर प्रविधि पर अधिक बल दिया जाता है; किन्तु इस प्रविधि का प्रयोग पहले भी होता था। उपनिषदों में प्रश्नोत्तर प्रणाली का प्रायः उल्लेख मिलता है। प्रश्नोपनिषद् में तो प्रश्न हैं ही, अन्य औपनिषदिक उपाख्यानों में भी प्रश्नोत्तर प्रणाली अपनायी गयी है। श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय के 34वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहतें हैं–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः।।

अर्थात्– उसे (ज्ञानको) तु प्रणाम करके, सब प्रकार के प्रश्न करके और सेना द्वारा जान से तखदर्शी ज्ञानी प्ररुष तुझे उस ज्ञान का उपदेष करेंगे।

इस श्लोक में भी प्रश्न के द्वारा ज्ञान–प्राप्ति का वर्णन किया गया। कहानी–कथन पहले खूब प्रचलित था। प्रतिदिन आचार्य अपने शिष्यों को पुराणों की कथाएँ सुनाता था। आज भी कहानी कथन को एक मनोवैज्ञानिक युक्ति स्वीकार किया गया है।

व्यक्तिगत शिक्षण (Individual Teaching) की ओर आज लोगों का ध्यान विशेष रूप से जा रहा है। पहले व्यक्तिगत शिक्षण ही प्रचलित था।

इन सब बातों के आधार पर कहा जा सकता है कि न तो नवीन प्रणाली ही सर्वथा दोषमुक्त है, न प्राचीन ही। दोनों को समन्वय करके अध्यापक को पढ़ाना चाहिए। न तो प्राचीन के प्रति और न ही नवीन के प्रति अनावश्यक आसक्ति होनी चाहिए। जिस प्रणाली में जो अच्छा हो उसे अवश्य ग्रहण कराना चाहिए। इसी आशय के विचार महाकवि कालिदास द्वारा 'मालविकाग्निमित्रं' के अंक में श्लोक 2 में भी प्रकट किये गये हैं–

पुराणमित्येव न साधु सर्व, न चापि सर्व नवमित्यवद्यम्।
सन्तः परीक्षान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धि।।

अर्थात्– पुरानी होने से न तो सभी वस्तुएं अच्छी होती हैं और न नयी होने बुरी तथा हेय। विवेकशील व्यक्ति अपनी बुद्धि से परीक्षा करके श्रेष्ठकर वस्तु को अंगीकार कर लेते हैं और मूर्ख लोग दूसरों द्वारा बताने पर ग्राह्म अथवा अग्राह्म निर्णय करते हैं।

## संदर्भ सूची


1. प्रो. डॉ० संतोष, 2021 संस्कृत शिक्षण, लखनऊ उत्तर प्रदेश
2. झा उदय शंकर 2011 संस्कृत शिक्षण चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
3. देवनाथ 1991–92 व्याकरण शिक्षण विद्ययः भारतीय विद्याा संस्थान
4. उपाध्याय राजेश्वर प्रो विशिष्ठ श्रीधर प्रो सिंह हरिश्चन्द्र 1995 संस्कृत एवं सूक्ष्म शिक्षण प्रविधिकी भारतीय विद्या संस्थान
5. द्विवेदी वाचस्पती डॉ० 1971 संस्कृत शिक्षण विधि सुशील प्रकाशन